इकाई 9 राजकोषीय नीति *

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 राजकोषीय नीति के प्रभाव

- 9.2.1 प्रति–चक्रीय राजकोषीय उपाय
- 9.2.2 नीति अंतराल
- 9.2.3 स्वचालित स्थिरक
- 9.2.4 अर्थशास्त्र में प्रत्याशाएँ
- 9.2.5 निजी निवेश का ह्रासमान प्रभाव

9.3 बजट : घटक और घाटा

- 9.3.1 बजट के घटक
- 9.3.2 बजट घाटा
- 9.3.3 बजट घाटे का प्रभाव
- 9.3.4 बजट घाटे का वित्तपोषण

9.4 राजकोषीय संधारणीयता

- 9.4.1 राजकीय बजट निबाध
- 9.4.2 ऋण संधारणीयता
- 9.4.3 उच्च ऋण–व–जीडीपी अनुपात के निहितार्थ

9.5 रिकार्डियन तुल्यता प्रस्थापना

9.6 सारांश

9.7 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

9.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप इस स्थिति में होंगे कि –

- राजकोषीय नीति के प्रभावों का वर्णन कर सकें;
- नीतिगत अंतरालों और उनकी भूमिका की पहचान कर सकें;
- स्पष्ट कर सकें कि निजी निवेश में ह्रासमान प्रभाव क्यों हो सकता है;
- सरकारी बजट के घटकों का वर्णन कर सकें;
- बजट घाटे के विभिन्न मापदंडों को परिभाषित कर सकें;
- ऋण–व–सकल घरेलू उत्पाद अनुपात के महत्व को समझ सकें;
- ऋण संधारणीयता की दशा अवकलित कर सकें; तथा
- रिकार्डियन तुल्यता की अवधारणा को स्पष्ट कर सकें।

*प्रो. कौस्तुभ बारिक, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय तथा डॉ. कृष्णकुमार, श्री वेंकटेश्वर कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

9.1 प्रस्तावना

देश के लिए भावी नीतियाँ बनाते समय नीति–निर्माता हमेशा कोई न कोई लक्ष्य लेकर चलते हैं। अर्थशास्त्र के क्षेत्र में ये लक्ष्य निम्नवत् हो सकते हैं –

1. आर्थिक स्थिरता,
2. आर्थिक संवृद्धि में तेजी,
3. रोजगार में वृद्धि,
4. गरीबी में कमी, और
5. लोगों के लिए जीवन की बेहतर गुणवत्ता।

इन लक्ष्यों को हासिल करने के लिए नीति–निर्माताओं के पास दो प्रमुख उपकरण होते हैं –

1. राजकोषीय नीति, और
2. मौद्रिक नीति।

राजकोषीय नीति किसी अर्थव्यवस्था में कुल उत्पादन एवं रोजगार जैसे समष्टि–अर्थशास्त्रीय चरों को प्रभावित करने के लिए सार्वजनिक व्यय (अर्थात् सरकारी खर्च) एवं कराधान के प्रयोग को इंगित करती है। दूसरी ओर, मौद्रिक नीति समष्टि–अर्थशास्त्रीय चरों को प्रभावित करने के लिए मुख्य रूप से ब्याज दर के प्रयोग को इंगित करती है।

इस पाठ्यक्रम में हम इन दोनों ही नीतियों के विषय में चर्चा करेंगे – प्रस्तुत इकाई में राजकोषीय नीति और इकाई 10 में मौद्रिक नीति।

विश्वव्यापी महामंदी (1929–34) के बाद कीन्स ने विहित किया कि सरकार को अर्थव्यवस्था में सक्रिय भूमिका निभानी चाहिए। तदंतर, लगभग एक दशक पहले, वर्ष 2008–09 के वैश्विक वित्तीय संकट के दौरान अधिकांश देशों ने अर्थव्यवस्था की विकास दर में तेजी लाने के लिए राजकोषीय प्रोत्साहन पैकेजों का सहारा लिया था। इसके अलावा, वर्ष 2020–21 की कोविड–19 महामारी के दौरान राजकोषीय नीति ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। भारत में, उदाहरण के लिए, जब महामारी के कारण अधिकांश राज्यों में लॉकडाउन के अनेक चरण देखे गए, केंद्र और राज्यों की सरकारों ने लोगों के जीवन और आजीविका की रक्षा के लिए अनेक वित्तीय उपाय किए।

सरकारों ने हमेशा सार्वजनिक व्यय को उच्च स्तर पर बनाए रखने का प्रयास किया है। उनके इस प्रयास से शासकीय राजस्व में राजकीय व्यय की कमी देखी गई है। इस प्रकार, अधिकांश मामलों में सरकार ने घाटे का बजट ही दर्शाया है। इस तरह के घाटे को आमतौर पर ऋण लेकर वित्तपोषित किया जाता है, जिससे सार्वजनिक ऋण बढ़ता है। इस इकाई में हम सार्वजनिक ऋण की विद्यमानता में सार्वजनिक व्यय की संधारणीयता के विषय में चर्चा करेंगे।

9.2 राजकोषीय नीति के प्रभाव

सरकार की भूमिका, विशेष रूप से उसका राजकोषीय आयाम, में समय के साथ बदलाव आया है। क्लासिकल अर्थशास्त्री 'लाईसेज फेयर' के दर्शन में विश्वास करते थे, जो कि एक फ्रांसीसी पदबंध है जिसका अर्थ है 'अकेले छोड़ दो' अथवा 'आपको करने दिया जाए'। इस दृष्टिकोण के अनुसार, व्यावसायिक मामलों में सरकार की ओर से न्यूनतम हस्तक्षेप होना चाहिए। वास्तव में, एडम स्मिथ ने सुझाव दिया कि सरकार को स्वयं को तीन मुख्य कर्तव्यों तक ही सीमित रखना चाहिए, यथा –

1. राष्ट्र की रक्षा,
2. न्याय प्रबंधन (कानून और व्यवस्था), और
3. कुछ सार्वजनिक कार्यों का स्थापन एवं अनुरक्षण (अवसंरचना, शिक्षा, आदि)।

केन्जियन अर्थशास्त्र, दूसरी ओर, सरकार की भूमिका पर एक पूरी तरह से अलग ही दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। कीन्स का मानना था कि यदि अर्थव्यवस्था बुरे समय से गुजर रही हो तो यह सरकार की भूमिका है कि वह हस्तक्षेप करे और अर्थव्यवस्था को संतुलन कायम करने में मदद करे। इस प्रकार, सरकार की भूमिका कानून एवं व्यवस्था बनाए रखने और रक्षा करने से कहीं अधिक है। अतः, सरकार को विभिन्न वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन में प्रवेश करना चाहिए। वास्तव में, यह दृष्टिकोण नीति–निर्माताओं के अनुकूल था, और इसी वजह से सरकार का आकार बढ़ता रहा।

सरकार वस्तुओं एवं सेवाओं की माँग का एक महत्वपूर्ण स्रोत होती है। राजकीय व्यय में भिन्नता के माध्यम से सरकार अर्थव्यवस्था की कुल माँग में परिवर्तन ला सकती है। कुल माँग में इस तरह के बदलाव से कुल उत्पादन में भी बदलाव आता है।

9.2.1 प्रति–चक्रीय राजकोषीय उपाय

किसी भी अर्थव्यवस्था में व्यापार चक्रों के कारण आर्थिक गतिविधियों में उतार–चढ़ाव देखा जा सकता है (देखें इकाई 4)। व्यापार मंदी के दौरान आर्थिक गतिविधियों में गिरावट आती है, जबकि विस्तारकारी चरण के दौरान अर्थव्यवस्था मुद्रास्फीति से ग्रस्त हो सकती है। राजकीय व्यय व्यापार चक्रों का सामना करने का एक महत्वपूर्ण साधन सिद्ध हो सकता है।

कीन्स ने 'पंप–प्राइमिंग' व्यय के विषय में चर्चा की, यथा, मंदी के दौरान और उसके बाद सार्वजनिक व्यय को बढ़ाने के लिए सरकार द्वारा उठाया गया एक कदम – सरकार द्वारा देश में नकदी बढ़ाना। इस चर्चा के अनुसार, अवसंरचना पर सार्वजनिक व्यय (बेहतर सड़कों, रेलवे नेटवर्क, निर्बाध बिजली आपूर्ति, आदि) भी निजी निवेश के लिए उत्प्रेरक के रूप में कार्य करता है।

राजकोषीय नीति के दो मुख्य साधन प्रचलन में हैं, यथा – सरकारी व्यय और कराधान। मंदी के दौरान, सरकार को अपने खर्च में वृद्धि करनी चाहिए ताकि कुल माँग में गिरावट की भरपाई हो सके। दूसरी ओर, अर्थव्यवस्था में उच्च मुद्रास्फीति होने पर सरकार को सार्वजनिक व्यय में कमी करनी चाहिए। इसी प्रकार, मंदी के दौरान कर दरों में कमी की जानी चाहिए और उत्कर्ष की अवधि के दौरान उनमें वृद्धि की जानी चाहिए।

हम उत्पादन, कीमतों और ब्याज दर पर राजकीय व्यय के प्रभाव के विषय में पहले ही चर्चा कर चुके हैं। इन तीन चरों पर अपने प्रभाव के अलावा, राजकोषीय नीति दीर्घावधि में दो और चरों को प्रभावित करती है, यथा –

1. धन का पुनर्वितरण, और
2. उत्पादन क्षमता में वृद्धि।

धन का पुनर्वितरण निम्नलिखित तीन माध्यमों से क्रियान्वित किया जा सकता है –

1. किसी भी अर्थव्यवस्था में कराधान प्रगतिशील होना चाहिए। इसका अर्थ है कि उच्च आय–वर्ग के लोगों के लिए कर की दर अधिक हो। जैसा कि आप जानते हैं, उच्च आय–वर्ग के लोग उच्च दर पर प्रत्यक्ष कर (जैसे व्यक्तिगत आयकर) का भुगतान करते हैं।
2. गरीब लोगों को अपनी आय की अनुपूर्ति हेतु विभिन्न प्रकार की आर्थिक सहायता (जैसे वृद्धावस्था पेंशन, रियायती राशन, आदि) दी जाती है।
3. सरकार कुछ क्षेत्रों को अधिमान्य अनुकूलन प्रदान करती है, जो कि लोगों की सापेक्ष आय को प्रभावित करता है (उदाहरण के लिए, प्राथमिकता वाले क्षेत्रों के लिए मुफ्त बिजली अथवा रियायती आदान)। इस तरह के उपायों से दीर्घावधि में आय एवं धन का पुनर्वितरण होता है।

सरकार कुछ ऐसी वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्पादन करती है जो आवश्यक नहीं कि 'सार्वजनिक वस्तुएँ' हों।

सरकार अस्पतालों, शैक्षणिक संस्थानों, बैंकों, जलापूर्ति आदि का परिचालन करती है। वह सड़कों, रेल की पटरियों, बिजली संयंत्रों व अनेक अवसंरचना परियोजनाओं का भी स्थापन करती है। इसके अलावा, सरकार स्टील, कोयला, भारी मशीनरी आदि अनेक वस्तुओं का भी उत्पादन करती है। दीर्घावधि में ये सभी उत्पादन गतिविधियाँ अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता को बढ़ाती हैं।

9.2.2 नीति अंतराल

हमने ऊपर उल्लेख किया कि सरकार व्यापार चक्रों के प्रभाव को कम करने के लिए अपने खर्च में बदलाव कर सकती है। इस प्रकार, केन्जियन अर्थशास्त्र सरकार को बहुत अधिक विवेकाधीन शक्ति सम्पन्न होने का सुझाव देता है। इन व्यापार चक्रों का मुकाबला करने के लिए सार्वजनिक निवेश में भिन्नता का प्रभाव, बहरहाल, कुछ नीति अंतरालों के कारण संभवतः प्रभावी न हो।

जब किसी अर्थव्यवस्था में कोई आर्थिक समस्या आती है तो उसे पहचानने में कुछ समय लगता है। उदाहरण के लिए, मान लीजिए कि अर्थव्यवस्था में मुद्रास्फीति बढ़ने वाली है। नीति–निर्माता संभवतः समस्या को तुरंत पहचानने की स्थिति में न हों। वे मूल्य वृद्धि को अस्थायी (मौसमी, आपूर्ति आघात, आदि) मान सकते हैं और यह भी मान सकते हैं कि बाजार शक्तियाँ उससे निपटने में सक्षम होंगी। इसके अलावा, नीति–निर्माताओं को कोई भी कार्रवाई करने से पहले यथोचित मंजूरी लेनी होती है। उदाहरण के लिए, कर की दरें आमतौर पर वार्षिक बजट प्रस्तुति के दौरान बदली जाती हैं। ऐसे में नीति–निर्माताओं ने यदि समस्या को पहचान भी लिया हो तो उन्हें उचित नीतिगत उपाय के कार्यान्वयन की प्रतीक्षा करनी होगी! अंत में जब सरकार कार्रवाई करेगी तो इसका असर कुछ समय बाद ही दिखेगा। उदाहरण के लिए, यदि सरकार मंदी का मुकाबला करने के लिए कुछ राहत पैकेज लेकर आती है तो अर्थव्यवस्था एक अंतराल के बाद प्रतिक्रिया देगी। जब उच्च राजकीय व्यय का प्रभाव दिखाई दे रहा हो तो अर्थव्यवस्था उच्च मुद्रास्फीति की ओर बढ़ सकती है। इस प्रकार, सरकार कुछ ऐसी कार्रवाई कर सकती है जिसकी आवश्यकता नहीं हो अथवा जो सरकार के उद्देश्य को ही नकार रही हो।

हम आम तौर पर चार प्रकार के नीति अंतराल देखते हैं, यथा –

1. सूचना अंतराल,
2. निर्णय अंतराल,
3. कार्यान्वयन अंतराल, और
4. प्रभाव अंतराल।

सूचना अंतराल : केंद्रीय सांख्यिकी कार्यालय समय–समय पर विभिन्न आर्थिक चरों पर आँकड़े एकत्र करता रहता है। आपने देखा होगा कि हमारे पास अनेक चरों पर आँकड़े नियमित रूप से नहीं होते। कुछ चरों (उदाहरण के लिए, कीमतों) पर हमारे पास आँकड़े साप्ताहिक आधार पर होते हैं, जबकि अन्य के लिए त्रैमासिक आधार पर। रोजगार, निवेश, खपत आदि पर आँकड़े इतनी जल्दी–जल्दी उपलब्ध नहीं होते। आप देखेंगे कि सर्वेक्षण की योजना बनाने, आँकड़े एकत्र करने और सांख्यिकीय विश्लेषण करने में काफी लंबा समय लगता है। इस प्रकार, किसी भी अर्थव्यवस्था में एक सूचना अंतराल देखा जाता है।

निर्णय अंतराल : अर्थव्यवस्था की स्थिति ज्ञात होने पर भी सरकार को निर्णय लेने के लिए कुछ समय इंतजार करना पड़ता है। नीति–निर्माताओं को कोई भी कार्रवाई करने से पूर्व उचित अनुमोदन प्राप्त करना होता है। उदाहरण के लिए, कर की दरें आमतौर पर वार्षिक बजट प्रस्तुति के दौरान बदली जाती हैं। इस प्रकार, यहाँ एक निर्णय अंतराल देखने में आता है।

कार्यान्वयन अंतराल : सरकारी नीतियों के कार्यान्वयन में समय लगता है। किसी भी निवेश परियोजना को लागू करने के लिए, उदाहरण के लिए, बहुत समय की आवश्यकता होती है।

मशीनरी के लिए ऑर्डर देने, कर्मचारियों की भर्ती करने और कच्चा माल खरीदने की प्रक्रिया में काफी समय लगता है। अतएव, जब नीति–निर्माताओं ने समस्या को पहचान लिया हो और कुछ परियोजनाओं को पूरा करने का फैसला कर लिया हो तब भी उन्हें परियोजनाओं के कार्यान्वयन की प्रतीक्षा करनी होगी। यही क्रियान्वयन अंतराल की ओर अग्रसर करता है।

प्रभाव अंतराल : नीतिगत निर्णयों के प्रभाव को महसूस करने में भी कुछ समय लगता है। कुछ सरकारी परियोजनाओं के प्रभाव तत्काल दिखाई दे जाते हैं, जबकि अन्य मामलों में इसमें कुछ अधिक समय लगता है। किसानों अथवा गरीब लोगों के बचत खाते में नकद हस्तांतरण का तत्काल प्रभाव देखा जा सकता है, परंतु कुछ उद्योगों की स्थापना होने से किसी क्षेत्र में गरीबी घटने में समय लगेगा।

इस प्रकार, सरकार की नीति के प्रभाव का हर मामले के आधार पर अलग–अलग मूल्यांकन करने की आवश्यकता होती है। बहरहाल, अधिकांश मामलों में वांछित प्रभावों को महसूस करने में समय अंतराल देखा जाता है।

9.2.3 स्वचालित स्थिरक

किसी भी अर्थव्यवस्था में करों को स्वचालित स्थिरक अर्थात् स्थिरता प्राप्त करने का साधन माना जाता है। जैसा कि आप जानते हैं, सरकार अनेक कारकों के कारण कई बार कर दरों में बदलाव करने की स्थिति में नहीं होती। इन किरणों में लोगों का प्रतिरोध हो सकता है। दूसरे, नीति–निर्माताओं को संसद द्वारा उसे मंजूरी मिलने तक इंतजार करना पड़ता है या फिर आगामी चुनाव आदि को ध्यान में रखते हुए सरकार कर दरों में वृद्धि करना ही नहीं चाहती। ऐसे मामलों में भी कर राजस्व का स्थायीकारी प्रभाव होगा। आइए, देखें कि यह कैसे होगा।

चलिए, मान लेते हैं कि अर्थव्यवस्था तेजी से आर्थिक संवृद्धि का अनुभव कर रही है। इसका तात्पर्य है कि पहले से अधिक श्रमिक कार्यरत हैं, फर्मों का कारोबार बढ़ रहा है और लोगों की आय बढ़ रही है। इससे व्यक्तियों और फर्मों द्वारा उच्च करों का भुगतान होने लगता है, भले ही सरकार कर दरों में वृद्धि न करे। परिणामतः, सरकार के कर राजस्व में वृद्धि होती है।

चूँकि राजकीय व्यय सकल घरेलू उत्पाद के आकार पर निर्भर नहीं करता है, सरकार आवश्यकता पड़ने पर अधिशेष बजट पेश करने का फैसला कर सकती है। दूसरी ओर, व्यापार मंदी के समय में रोजगार के स्तर, लोगों की आय और फर्मों के कारोबार के स्तर में गिरावट आती है। ऐसे समय के दौरान लोगों और फर्मों द्वारा भुगतान किए जाने वाले करों में गिरावट आती है, भले ही कर की दरें अपरिवर्तित रहें। इस प्रकार, आयकर जैसे प्रत्यक्ष कर स्वचालित स्थिरक के रूप में काम करते हैं;वे प्रायः व्यापार चक्रों के प्रभाव को कम करते हैं।

9.2.4 अर्थशास्त्र में प्रत्याशाएँ

कीन्स ने अर्थशास्त्र में प्रत्याशाओं के महत्व को पहचाना। हालाँकि, उन्होंने अपने विश्लेषण में स्पष्ट रूप से प्रत्याशाओं का परिचय नहीं दिया। उपर्युक्त के दो कारण रहे, यथा –

1. प्रत्याशाएँ अस्थिर होती हैं और उन्हें विश्लेषण के तहत लाना मुश्किल होता है।
2. कीन्स ने अपने विश्लेषण को अल्पावधि पर केंद्रित किया – अल्पावधि में प्रत्याशाओं में बहुत अधिक परिवर्तन नहीं हो सकता।

जैसा कि आपको पाठ्यक्रम BECC 106: माध्यमिक समष्टि अर्थशास्त्र–Iसे ज्ञात है, प्रत्याशाओं का निर्माण दो महत्वपूर्ण सिद्धांतों के अनुसार हो सकता है, यथा –अनुकूली प्रत्याशाएँ और तर्कसंगत प्रत्याशाएँ।

उक्त पाठ्यक्रम BECC106 की इकाई 3 में हमने राजकोषीय नीति के प्रभावों पर चर्चा की थी। तालिका 3.2 में हमने राजकोषीय विस्तार अर्थात् राजकीय व्यय में वृद्धि और कर दरों में कमी) के

अल्पावधिक एवं दीर्घावधिक प्रभाव को प्रस्तुत किया था। विस्तारकारी राजकोषीय नीति के परिणामस्वरूप अल्पावधि में निम्नलिखित प्रभाव देखे जाते हैं –

1. उत्पादन में वृद्धि होती है;
2. मूल्य स्तर में वृद्धि होती है;और
3. ब्याज दर में वृद्धि होती है।

दीर्घावधि में कुल उत्पादन वापस अपने स्वाभाविक स्तर (अर्थात् संभावित उत्पादन) पर वापस आ जाता है, जबकि मूल्य स्तर एवं ब्याज दर उच्च स्तर पर ही बने रहते हैं।

हम यह मानकर चले थे कि प्रत्याशाओं का विन्यास अनुकूली प्रत्याशाओं के अनुसार होता है। तदनुसार, अल्पावधि में प्रत्याशित मूल्य और वास्तविक मूल्य के बीच विसंगति देखी जाती है। यदि हम तर्कसंगत प्रत्याशाओं को लेकर चलें तो कुल उत्पादन में कोई वृद्धि नहीं होगी। तर्कसंगत प्रत्याशाओं के तहत अल्पावधि में भी प्रत्याशित मूल्य स्तर और वास्तविक मूल्य स्तर के बीच कोई अंतर नहीं होता।

9.2.5 निजी निवेश का ह्रासमान प्रभाव

कीन्स ने राजकोषीय नीति उपायों, मुख्य रूप से सार्वजनिक कार्यों पर सरकारी खर्च, का समर्थन किया। उस समय की आर्थिक नीति पर अधिकांश बहस बेरोजगारी के निदान स्वरूप सार्वजनिक कार्यों पर सरकारी खर्च की वांछनीयता पर केंद्रित होता थी। कीन्स के विचार के विरुद्ध तर्क देने वालों ने मुख्य रूप से सरकारी खर्च के वित्तपोषण की ओर ध्यान आकर्षित किया। अनेक अर्थशास्त्री एवं पर्यवेक्षक बजट घाटे में निरंतर वृद्धि से व्यथित हो गए और उन्होंने इसे हानिकारक ही माना।

मान लीजिए कि कर में कटौती हुई है। इससे सरकार का राजस्व कम होगा। सार्वजनिक व्यय, फिर भी, अपरिवर्तित रहने की संभावना है। बजट घाटे को सरकारी ऋणादान द्वारा वित्तपोषित करने की आवश्यकता है। केन्जियन दृष्टिकोण के अनुसार, कर में कटौती से उपभोक्ताओं की खर्च करने योग्य आय में वृद्धि होगी। उच्चतर प्रयोज्य आय से वस्तुओं एवं सेवाओं की माँग बढ़ेगी, जिससे उपभोग व्यय में वृद्धि होगी। उपभोग व्यय में वृद्धि से कुल माँग में वृद्धि होगी। कुल माँग में वृद्धि से उत्पादन एवं रोजगार में वृद्धि होगी।

आइए, अब हम नियोक्लासिकल दृष्टिकोण को समझते हैं। कर में कटौती के कारण परिवारों की प्रयोज्य आय में वृद्धि देखी जा रही है। इस आय का एक हिस्सा उपभोग (सीमांत उपभोग प्रवृत्ति के मान के आधार पर) पर खर्च किया जाएगा, जबकि शेष हिस्सा बचाया जाएगा। उच्चतर प्रयोज्य आय के परिणामस्वरूप परिवारों की कुल बचत (निजी बचत) में वृद्धि होगी। तथापि, निजी बचत में इस प्रकार की वृद्धि सार्वजनिक बचत में गिरावट से कम ही रहेगी। अतएव, अर्थव्यवस्था की वांछित कुल बचत में कमी देखी जाएगी। चूँकि अब कुल बचत कुल निवेश से कम हो जाती है, वास्तविक ब्याज दर में वृद्धि होगी। यह उच्चतर ब्याज दर घरेलू निजी निवेश का ह्रासमान प्रभाव दर्शाएगी। निजी निवेश के इस ह्रासमान प्रभाव के परिणामस्वरूप दीर्घावधि में उत्पादनशील पूँजी का भंडार घटता जाएगा।

बोध प्रश्न 1

1. स्पष्ट कीजिए कि राजकीय व्यय प्रति–चक्रीय क्यों होना चाहिए।

.....

.....

.....

.....

2. नीति अंतराल क्या हैं और वे राजकोषीय नीति को कैसे प्रभावित करते हैं?

.....

.....

.....

.....

3. समझाइए कि क्यों किसी अर्थव्यवस्था में आयकर को एक स्वचालित स्थिरक के रूप में देखा जा सकता है।

.....

.....

.....

.....

9.3 बजट : घटक और घाटा

आय–व्ययक अर्थात् बजट किसी भी सरकार का वार्षिक वित्तीय विवरण होता है। यह हमें सरकार के राजस्व एवं व्यय का विवरण देता है। जैसा कि आप जानते हैं, भारत के मामले में, केंद्र सरकार का हर वर्ष बजट संसद के समक्ष उसकी स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किया जाता है। इसी प्रकार, राज्य सरकारों का बजट संबंधित राज्य विधानमंडल के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। जब हम सार्वजनिक क्षेत्र की बात करते हैं तो इसमें केंद्र, राज्य और स्थानीय तीनों सरकारें शामिल होती हैं।

9.3.1 बजट के घटक

केन्द्रीय बजट वित्त मंत्री द्वारा अर्थशास्त्रियों, उद्यमियों, राज्य सरकारों आदि के परामर्श से तैयार किया जाता है। देश के बजट में दो खाते होते हैं –

1. राजस्व बजट, और
2. पूँजी बजट।

राजस्व बजट में सरकार की राजस्व प्राप्तियाँ अथवा वर्तमान प्राप्तियाँ और उन प्राप्तियों से किए जा सकने वाले व्यय शामिल होते हैं। दूसरी ओर, पूँजी बजट में पूँजीगत प्राप्तियाँ और पूँजीगत व्यय शामिल होते हैं। यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि राजस्व बजट में ऐसी वस्तुएँ होती हैं जो अपनी प्रकृति में आवर्ती होती हैं और सरकार के लिए कोई परिसंपत्ति अथवा देयधन सृजित नहीं करतीं। इसके अलावा, सरकार की राजस्व प्राप्तियाँ ऐसी प्राप्तियाँ होती हैं जिन्हें वापस लौटाने की आवश्यकता नहीं होती। दूसरी ओर, पूँजी बजट में लेन–देन सरकार के लिए परिसंपत्ति और देनदारियों का सृजन करता हैं।

राजस्व प्राप्तियों के दो स्रोत होते हैं। यथा –

1. कर राजस्व, और
2. गैर–कर राजस्व।

विभिन्न प्रकार के कर सरकार के राजस्व का सबसे महत्वपूर्ण स्रोत होते हैं (कुल राजस्व एवं पूँजीगत प्राप्तियों का लगभग 53 प्रतिशत)। ये कर दो प्रकार के होते हैं, यथा – प्रत्यक्ष कर और अप्रत्यक्ष कर। प्रत्यक्ष कर व्यक्तियों की आय (जैसे व्यक्तिगत आयकर) और निगमों की निवल आय अथवा लाभ (जैसे कॉर्पोरेट आयकर) पर लगाया जाता है। दूसरी ओर, अप्रत्यक्ष कर वस्तुओं एवं

सेवाओं की खरीद और बिक्री (जैसे वस्तु एवं सेवा कर (GST)) पर लगाया जाता है। करों के अलावा, राजस्व प्राप्तियों के अन्य स्रोत जुर्माना और शुल्क हैं।

शुल्क और कर के बीच एक सूक्ष्म अंतर है। सरकार कुछ सेवाओं को प्रदान करने के लिए शुल्क एकत्र करती है। दूसरी ओर, कर व्यक्तियों और फर्मों द्वारा सरकार को किया जाने वाला अनिवार्य भुगतान होता है, जिसके लिए कोई प्रतिफल नहीं होता (अर्थात् सरकार करदाता को कोई सेवा अथवा लाभ प्रदान नहीं करती)। पूँजीगत प्राप्तियों का प्रमुख स्रोत सरकार द्वारा ऋणादान (कुल प्राप्तियों का लगभग 36 प्रतिशत) होता है।

व्यय पक्ष पर, सरकार द्वारा तीन प्रकार के व्यय किए जाते हैं, यथा –

1. वस्तुओं एवं सेवाओं की सरकारी खरीद,
2. हस्तांतरण भुगतान, और
3. सब्सिडी।

सरकार पूँजीगत वस्तुओं सहित वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्पादन करती है। इस तरह के उत्पादन के लिए उसे श्रमिक नियोजित करने पड़ते हैं, पूँजी का प्रबंध करना होता है और मध्यवर्ती आदानों की खरीद करनी होती है।

सरकार के कुछ खर्चे आवर्ती प्रकृति के होते हैं (उदाहरण के लिए, मजदूरी और वेतन), जबकि अन्य एक बार के होते हैं (उदाहरण के लिए, लड़ाकू विमान)। स्थानांतरण भुगतान व्यक्तियों को एकतरफा भुगतान है, जिसके लिए कोई प्रतिफल नहीं होता (उदाहरण के लिए, वृद्धावस्था पेंशन), इस अर्थ में कि प्राप्तकर्ता सरकार को बदले में कुछ भी भुगतान नहीं करता है।

ध्यान देने की बात है कि हस्तांतरण भुगतान करों के विपरीत होते हैं – करों के मामले में व्यक्तियों एवं फर्मों से सरकार को धन का प्रवाह होता है, जबकि 'हस्तांतरण भुगतान' के मामले में सरकार से व्यक्ति को धन का प्रवाह होता है। 'सब्सिडी' अर्थात् आर्थिक सहायता बाजार मूल्य से कम कीमत पर कुछ वस्तुओं एवं सेवाओं की आपूर्ति को कहा जाता है। उदाहरण के लिए, सरकार गरीब परिवारों को रियायती मूल्य पर खाद्यान्न उपलब्ध कराती है। सब्सिडी का एक अन्य उदाहरण अपनी उत्पादन लागत की तुलना में बहुत कम कीमत पर घरों में जल की आपूर्ति हो सकती है। इसका तात्पर्य यह है कि सब्सिडी में राजकोष की कुछ लागतें शामिल होती हैं।

बजट में सरकारी व्यय को दो श्रेणियों में रखा जाता है। यथा – राजस्व व्यय और पूँजीगत व्यय। राजस्व बजट से व्यय की प्रमुख मदें हैं – मजदूरी एवं वेतन, रक्षा व्यय, ब्याज भुगतान के कारण स्थानान्तरण, पेंशन और बेरोजगारी भत्ते। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, राजस्व व्यय से परिसंपत्ति का निर्माण नहीं होता है। ऐसा व्यय जिसके परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था के सड़क, भवन, कारखाने, बाँध आदि पूँजी भंडार में वृद्धि होती है, *पूँजीगत व्यय* के रूप में जाना जाता है।

9.3.2 बजट घाटा

हमने ऊपर उल्लेख किया है कि राजस्व प्राप्तियों को सरकार द्वारा वापस नहीं किया जाता है, जबकि पूँजीगत प्राप्तियों को वापस लौटाना पड़ता है। इस प्रकार, सरल शब्दों में, राजस्व प्राप्तियाँ सरकार की आय हैं, जबकि पूँजीगत प्राप्तियाँ सरकार के लिए ऋण हैं। बजट के संदर्भ में, यदि कुल व्यय (राजस्व और पूँजी दोनों) सरकार की राजस्व प्राप्तियों के बराबर हो तो बजट को *संतुलित* कहा जाता है। यदि कुल व्यय राजस्व प्राप्तियों से कम हो तो इसे *अधिशेष बजट* कहा जाता है। दूसरी ओर, यदि कुल व्यय राजस्व प्राप्तियों से अधिक हो तो इसे *घाटे का बजट* कहा जाता है।

आपने बजट प्रस्तुति के बाद की बातचीत के दौरान घाटे की तीन अवधारणाओं के बारे में अवश्य सुना होगा अर्थात् राजकोषीय घाटा, राजस्व घाटा और प्राथमिक घाटा। आगे बढ़ने से पहले, आइए, हम इन अवधारणाओं को परिभाषित करें।

राजस्व घाटा : यह सरकार के राजस्व व्यय और राजस्व प्राप्तियों के बीच के अंतर को दर्शाता है। यह इस ओर ध्यान आकर्षित करता है कि सरकार अपनी राजस्व प्राप्तियों से अपने राजस्व व्यय को किस हद तक पूरा नहीं कर सकती है। यहाँ आप देखेंगे कि –

राजस्व घाटा = राजस्व प्राप्तियाँ – राजस्व व्यय

राजकोषीय घाटा : यह कुल व्यय (राजस्व और पूँजी दोनों) और राजस्व प्राप्तियों के बीच का अंतर होता है। यहाँ आप देखेंगे कि –

राजकोषीय घाटा = राजस्व प्राप्तियाँ – कुल व्यय (राजस्व+पूँजी)

राजकोषीय घाटा सरकार की ऋण आवश्यकताओं का आकलन दर्शाता है।

प्राथमिक घाटा : ब्याज भुगतान (ऋण की अदायगी) राजस्व व्यय (राजस्व प्राप्तियों का लगभग 25 प्रतिशत) का एक बड़ा हिस्सा होता है। इस संदर्भ में आपको याद रखना चाहिए कि ब्याज भुगतान पिछली अवधि में ऋणादान पर होगा। इस प्रकार, किसी भी अर्थव्यवस्था के राजकोषीय स्वास्थ्य का आकलन करने के लिए हम प्राथमिक घाटे को ही देखते हैं। हम राजकोषीय घाटे से ब्याज भुगतान घटाकर प्राथमिक घाटा प्राप्त करते हैं।

प्राथमिक घाटा = राजकोषीय घाटा – ब्याज भुगतान

= राजस्व प्राप्तियाँ – कुल व्यय – ब्याज भुगतान

राजस्व व्यय का एक हिस्सा ब्याज के भुगतान पर खर्च किया जाता है। यह वास्तव में देश पर कर्ज के बोझ को कम करता है। घाटा एवं अधिशेष के साथ–साथ कर एवं व्यय भी 'प्रवाह चर' कहलाते हैं। इन चरों को किसी समयावधि विशेष में परिभाषित किया जाता है। सार्वजनिक ऋण एक प्रकार का 'पूँजी चर' होता है और इसे किसी समय–बिंदु विशेष पर परिभाषित किया जाता है।

9.3.3 बजट घाटे का प्रभाव

राजकोषीय घाटा सरकार द्वारा ऋणादान की ओर ले जाता है। इस तरह के कर्ज वर्ष दर वर्ष सार्वजनिक ऋण के रूप में जमा होते रहते हैं। सरकार को विद्यमान सार्वजनिक ऋण पर नियमित आधार पर ब्याज का भुगतान करना पड़ता है। यदि सार्वजनिक ऋण का स्तर ऊँचा होता है तो ब्याज भुगतान भी अधिक ही होता है। यदि राजस्व बजट अधिशेष होता है तो सरकार अपने विद्यमान ऋण का कुछ हिस्सा चुका सकती है (ताकि सार्वजनिक ऋण के स्तर में कुछ कमी हो)। दूसरी ओर, यदि राजस्व बजट घाटा होता है तो आगे के ऋणादान के कारण सार्वजनिक ऋण में वृद्धि होती है। सार्वजनिक ऋण की चुकौती राजस्व प्राप्तियों का एक बड़ा हिस्सा ले लेती है। इस प्रकार, सार्वजनिक धन के लाभकर उपयोग के लिए बहुत कम बचता है।

अब आप समझ सकते हैं कि राजनीतिक नेताओं, शोधकर्ताओं और आम जनता – हर तरफ से राजकोषीय घाटे को कम करने के लिए कोलाहल क्यों सुनाई देता है। राजकोषीय घाटा प्रायः जीडीपी के प्रतिशत के रूप में व्यक्त किया जाता है।

9.3.4 बजट घाटे का वित्तपोषण

बजट घाटे को वित्तपोषित करने के तीन स्रोत देखे जाते हैं, जिनका उल्लेख नीचे किया गया है।

1. **घरेलू बाजार से ऋणादान** : सरकार धन जुटाने के लिए निश्चित परिपक्वता अवधि के ऋणपत्र जारी करती है। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, बाजार से उधार लेने से सार्वजनिक ऋण का संचय होता है। सरकार घरेलू बाजार से अथवा बाकी दुनिया से उधार ले सकती है।

घरेलू बाजार से उधार लेने से मुद्रा आपूर्ति में वृद्धि नहीं होती है। हालाँकि, राजस्व प्राप्तियों से ब्याज और मूल राशि का भुगतान प्रायः देश के लिए एक समस्या बन जाता है। इस संदर्भ में 'ऋण–व–जीडीपी अनुपात' की अवधारणा महत्वपूर्ण है। यदि ऋण–व–सकल घरेलू उत्पाद का अनुपात अधिक होता है तो राजस्व प्राप्तियों का एक बड़ा हिस्सा सार्वजनिक ऋण की अदायगी की ओर मोड़ना पड़ता है। वर्ष 2019–20 में भारत के मामले में, उदाहरण के लिए, सकल घरेलू उत्पाद के प्रतिशत के रूप में सार्वजनिक ऋण (राज्य और केंद्र संयुक्त) लगभग 76 प्रतिशत रहा।

2. **बाकी दुनिया से ऋणादान** : बाह्य ऋणविभिन्नरूपों में हो सकता है,जैसे –

1. अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक जैसे अंतर्राष्ट्रीय संगठनों से आसान ऋण,
2. वाणिज्यिक बाजारों से उधार, अथवा
3. अंतर्राष्ट्रीय प्रवासियों (उदाहरण के लिए, अप्रवासी भारतीय) द्वारा जमा।

आप देखेंगे कि बाह्य ऋण से विदेशी ऋण का संचय होता है। ऐसे बाह्य ऋण की ऋण चुकौती (अर्थात् ब्याज एवं मूलधन का भुगतान) चालू खाता प्राप्तियों से की जानी चाहिए। इस संदर्भ में 'ऋण–व्यय अनुपात' की अवधारणा बहुत महत्वपूर्ण है। ऋण–व्यय अनुपात को देश की चालू खाता प्राप्तियों के लिए ऋण–व्यय के अनुपात के रूप में परिभाषित किया जाता है। वर्ष 2019–20 में भारत का ऋण–व्यय अनुपात लगभग 6.5 प्रतिशत रहा।

3. **घाटे का मुद्रीकरण** : जब सरकार बाजार से उधार लेती है तो लोगों के हाथ में मुद्रा की आपूर्ति में कमी आती है। घाटे के मुद्रीकरण के मामले में, अर्थव्यवस्था में मुद्रा आपूर्ति में वृद्धि होती है। यह दो चरणों वाली प्रक्रिया है, जिसमें सरकार अपने खर्च की भरपाई करने के लिए सरकारी ऋणपत्र जारी करती है और केंद्रीय बैंक इन ऋणपत्रों को खरीदता है। केंद्रीय बैंक परिपक्व होने तक ये ऋणपत्र अपने पास ही रखता है। इस प्रक्रिया के फलस्वरूप अर्थव्यवस्था में उच्च–शक्ति मुद्रा की बढ़ी हुई आपूर्ति देखी जाती है। इस प्रकार घाटे का मुद्रीकरण मुद्रास्फीतिकारी हो सकता है। उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए, राजकोषीय उत्तरदायित्व एवं बजट प्रबंधन अधिनियम (FRBM), 2003 यह विहित करता है कि भारतीय रिजर्व बैंक को, असाधारण परिस्थितियों को छोड़कर, सरकारी ऋणपत्र कभी नहीं खरीदने चाहिए।

9.4 राजकोषीय स्थिरता

किसी भी सरकार को अपने सार्वजनिक वित्त (कराधान, व्यय एवं ऋण) को इस तरह से बनाए रखने में सक्षम होना चाहिए कि राजकोषीय नीति दीर्घावधि में विश्वसनीय और टिकाऊ साबित हो। सरकार को अपने भावी राजस्व एवं व्यय का सही–सही आकलन कर सकने की स्थिति में होना चाहिए। उसे बजट में प्रतिबद्ध परियोजनाओं को पूरा करना चाहिए। साथ ही, उसे अपने कर्ज को चुकाने से चूकना नहीं चाहिए।

सरकार के समक्ष हमेशा एक बजट निबाध रहता है। जबकि राजस्व प्राप्तियों को बढ़ाने का दायरा सीमित होता है, जनता की ओर से सार्वजनिक व्यय में वृद्धि की माँग की जाती है। यह सरकार को एक विकट स्थिति में डाल देता है और सरकार आमतौर पर घाटे के बजट को लेकर चलती है। यह बजट घाटा आमतौर पर सार्वजनिक ऋण के माध्यम से वित्तपोषित होता है। सरकार हर वर्ष कर्ज का कुछ हिस्सा चुकाती है, परंतु वर्ष दर वर्ष घाटे का बजट सार्वजनिक ऋण में वृद्धि की ओर ले जाता है।

घाटे का बजट सरकार के लिए एक सरल विकल्प प्रतीत होता है। सरकार कर बढ़ाकर अपने मतदाताओं को अलग–थलग नहीं करना चाहती है। सन 1980 और 1990 के दशक के दौरान कई वर्षों तक भारत सरकार का राजकोषीय घाटा बहुत अधिक रहा।

राजकोषीय प्रबंधन में पारदर्शिता लाने के लिए सरकार वर्ष 2003 में राजकोषीय उत्तरदायित्व एवं बजट प्रबंधन (FRBM) अधिनियम लेकर आई। इस अधिनियम ने विहित किया कि –

1. राजस्व घाटे को पूरी तरह से समाप्त किया जाना चाहिए,
2. राजकोषीय घाटे को सकल घरेलू उत्पाद के 3 प्रतिशत तक लाया जाना चाहिए, और
3. ऋण–व–जीडीपी अनुपात 60 प्रतिशत (केंद्र के लिए 40 प्रतिशत और राज्यों के लिए 20 प्रतिशत) से कम होना चाहिए।

इन लक्ष्यों को पूरी तरह से हासिल नहीं किया गया है और वर्ष दर वर्ष इन लक्ष्यों को संशोधित किया जाता रहा है। बहरहाल, यह अधिनियम भारत में राजकोषीय घाटे और सार्वजनिक ऋण पर लगाम लगाने में सक्षम रहा है।

9.4.1 राजकीय बजट निबाध

चलिए, मान लेते हैं (सरलता के लिए) कि कर (T_t) सार्वजनिक राजस्व का एकमात्र स्रोत हैं। अब मान लीजिए कि वर्तमान अवधि में सरकारी व्यय (निवल ब्याज भुगतान) G_t है और सरकार का वर्तमान ऋण D_{t-1} है। यदि सरकार के वर्तमान ऋण पर ब्याज की दर r हो तो वर्तमान समयावधि के दौरान ब्याज भुगतान rD_{t-1} होगा।

अब समयावधि (t+1) में सार्वजनिक ऋण पूँजी में निवल परिवर्तन निम्नवत् होगा –

$$\Delta D_t = (G_t - T_t) + rD_{t-1} \quad \text{... (9.1)}$$

राजकीय बजट निबाध के अनुसार, वर्ष (t) के दौरान सरकारी ऋण $(D_t - D_{t-1}) = \Delta D_t$ में निवल परिवर्तन *प्राथमिक घाटे* और वर्ष (t) के ही दौरान ब्याज भुगतान का कुलयोग होता है।

अतः समयावधि (t) में ऋण होगा –

$$D_t = D_{t-1} + (G_t - T_t) + rD_{t-1} \quad \text{... (9.2)}$$

अबसमीकरण (9.2) में प्रयुक्त पदों को पुनर्व्यवस्थित कर हम निम्नलिखित समीकरण प्राप्त कर सकते हैं –

$$D_t = (1 + r)D_t + (G_t - T_t) \quad \text{... (9.3)}$$

समीकरण (9.3) का तात्पर्य उस तरीके से है जिसमें समय के साथ सार्वजनिक ऋण विकसित होगा। याद रखें कि हम वर्तमान ऋण (D_t) में राजकोषीय घाटा नहीं, बल्कि प्राथमिक घाटा जोड़ते हैं। यह इस तथ्य के कारण है कि कुल सरकारी व्यय में, परिभाषा के अनुसार, ब्याज भुगतान भी शामिल होता है। याद करें कि राजकोषीय घाटा ब्याज भुगतान पर सरकारी खर्च को भी ध्यान में रखता है।

9.4.2 ऋण संधारणीयता

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, सरकार को पिछले ऋण पर ब्याज का भुगतान करना होगा और मूल राशि चुकानी होगी। यह देखा गया है कि सरकार किसी भी समय अपना सारा कर्ज नहीं चुकाती है – वह हर वर्ष ऋण का कुछ हिस्सा ही चुकाती है। इस प्रक्रिया में, वर्ष दर वर्ष सार्वजनिक ऋण की राशि में परिवर्तन होता रहता है। देश के सकल घरेलू उत्पाद में नियमित वृद्धि होती है, जिससे राजस्व संग्रह में वृद्धि होती है और इस कारण चुकौती क्षमता में भी वृद्धि होती है। तथापि, सार्वजनिक ऋण में वृद्धि और सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि को संतुलित करने की आवश्यकता होती है। राजकोषीय संधारणीयता से ज्ञात होता है कि ऋण–व–जीडीपी अनुपात एक प्रबंधनीय स्तर पर होना चाहिए और समय के साथ बढ़ना नहीं चाहिए।

चलिए, ऋण–व–जीडीपी अनुपात को हम निम्नवत् परिभाषित करते हैं –

$$d_t = \frac{D_t}{Y_t}.$$

अब समीकरण (9.3) के दोनों पक्षों को Y_t से विभाजित कर हमें निम्नलिखित समीकरण प्राप्त होता है –

$$\frac{D_t}{Y_t} = (1+r)\frac{D_{t-1}}{Y_t} + \frac{G_t - T_t}{Y_t} \quad \text{...(9.4)}$$

हम D_{t-1}/Y_t को $(D_t/Y_{t-1})(Y_{t-1}/Y_t)$ के रूप में पुनः लिख सकते हैं। दूसरे शब्दों में, हम अंश और हर को Y_{t-1} से गुणा कर देते हैं, यथा –

$$\frac{D_t}{Y_t} = (1+r)\left(\frac{Y_{t-1}}{Y_t}\right)\frac{D_{t-1}}{Y_{t-1}} + \frac{G_t - T_t}{Y_t} \quad \text{...(9.5)}$$

ध्यान देने की बात है कि समीकरण (9.5) के सभी पद अब उत्पादन *Y* के अनुपात के संदर्भ में हैं। उपर्युक्त समीकरण को सरल बनाने के लिए हम मान लेते हैं कि उत्पादन वृद्धि स्थिर है और हम उत्पादन वृद्धि दर को g से निरूपित करते हैं। अतः Y_{t-1}/Y_t को $1/(1+g)$ के रूप में भी लिखा जा सकता है।

[चूँकि $1/(1+g) = \frac{1}{1+\frac{(Y_t - Y_{t-1})}{Y_{t-1}}} = = \frac{1}{\frac{Y_{t-1}+(Y_t - Y_{t-1})}{Y_{t-1}}} = \frac{Y_{t-1}}{Y_t}$]

तदनुसार, समीकरण (9.5) को निम्नवत् भी लिखा जा सकता है –

$$\frac{D_t}{Y_t} = (1+r)/(1+g)\frac{D_{t-1}}{Y_{t-1}} + \frac{G_t - T_t}{Y_t} \quad \text{...(9.6)}$$

चलिए, अब हम सन्निकटन $(1+r)/(1+g) = (1+r-g)$ का प्रयोग करते हैं।

तदनुसार, हम समीकरण (9.6) को निम्नवत् भी लिख सकते हैं –

$$\frac{D_t}{Y_t} = (1+r-g)\frac{D_{t-1}}{Y_{t-1}} + \frac{G_t - T_t}{Y_t} \quad \text{...(9.7)}$$

अंततः, समीकरण (9.7) को पुनर्व्यवस्थित कर हमें निम्नलिखित समीकरण प्राप्त होता है –

$$\frac{D_t}{Y_t} - \frac{D_{t-1}}{Y_{t-1}} = (r-g)\frac{D_{t-1}}{Y_{t-1}} + \frac{G_t - T_t}{Y_t}$$

$$(d_t - d_{t-1}) = (r-g)\, d_{t-1} + \frac{G_t - T_t}{Y_t} \quad \text{...(9.8)}$$

समीकरण (9.8) से हम पाते हैं कि समय के साथ ऋण अनुपात में परिवर्तन (समीकरण के बाईं ओर) दो पदों के कुलयोग के बराबर हो जाता है, यथा –

1. वास्तविक ब्याज दर और विकास दर के बीच का अंतर गुणा प्रारंभिक ऋण अनुपात, तथा
2. सकल घरेलू उत्पाद के अनुपात के रूप में प्राथमिक घाटा।

दूसरा पद प्राथमिक घाटे एवं जीडीपी का अनुपात है। समीकरण (9.8) से हम पाते हैं कि ऋण–व–जीडीपी अनुपात में वृद्धि अपेक्षाकृत अधिक होगी, यदि –

1. ब्याज दर अधिक हो,
2. अर्थव्यवस्था की विकास दर कम हो, और
3. सकल घरेलू उत्पाद में प्राथमिक घाटे का अनुपात अधिक हो।

9.4.3 उच्च ऋण–व–जीडीपी अनुपात के निहितार्थ

मान लीजिए कि बड़ा घाटा उच्च ऋण–व–सकल घरेलू उत्पाद अनुपात की ओर ले गया है। ऐसे में सरकार को क्या करना चाहिए? केवल इस उच्च स्तर पर ऋण को स्थिर कर देने का प्रयास पर्याप्त नहीं होगा। उच्च ऋण–व–जीडीपी अनुपात 'ऋण जाल' की स्थिति को जन्म दे सकता है – ताकि अपना ऋण चुकाने के लिए देश और अधिक कर्ज ले सके। ऐसी दशाएँ राजकोषीय नीति के संचालन को अत्यंत कठिन बना देती हैं।

आइए, अब समीकरण (9.8) को कुछ अधिक बारीकी से देखते हैं –

$$\frac{D_t}{Y_t} - \frac{D_{t-1}}{Y_{t-1}} = (r-g)\frac{D_{t-1}}{Y_{t-1}} + \frac{G_t - T_t}{Y_t} \quad \text{... (9.8)}$$

चलिए, मान लेते हैं कि किसी देश का ऋण–व–जीडीपी अनुपात बहुत अधिक है, माना यह 100%है। अब मान लीजिए कि वास्तविक ब्याज दर 3% है और आर्थिक विकास दर 2% है। यह भी मान लीजिए कि सरकार कठिन राजकोषीय स्थिति के प्रति सचेत है और वह सकल घरेलू उत्पाद के 1%के प्राथमिक अधिशेष के साथ एक अधिशेष बजट चला रही है। यदि हम इन आँकड़ों को

समीकरण (9.8) में लागू करें तो समीकरण (9.8) के दाईं ओर पहला पद (3%– 2%) गुणा 100%= सकल घरेलू उत्पाद का 1% होगा। चूँकि सरकार सकल घरेलू उत्पाद के 1% (यथा, $\frac{G_t - T_t}{Y_t}$= सकल घरेलू उत्पाद का 1%) का प्राथमिक अधिशेष चला रही है, ऋण–व–जीडीपी अनुपात में स्थिरता है।

आइए, अब एक और परिदृश्य पर विचार करते हैं। मान लीजिए कि वित्तीय निवेशकों को चिंता होने लगती है कि शायद सरकार कर्ज पूरी तरह से चुकाने में सक्षम न हो। सरकार द्वारा आगे ऋणादान तभी संभव होगा जब ब्याज दर में वृद्धि की जाएगी। हालाँकि, ब्याज दर में कोई भी वृद्धि ऋण स्थिरीकरण को और कठिन बना देगी। उदाहरण के लिए, मान लीजिए कि ब्याज दर 3%

से बढ़कर 5% हो जाती है। तब केवल ऋण को संधारणीय बनाने के लिए ही सरकार को 3%का प्राथमिक अधिशेष चलाने की आवश्यकता होगी अर्थात् समीकरण (9.8) का दाहिना पक्ष तब (5%–2%) × 100% = सकल घरेलू उत्पाद के 3% के बराबर हो जाएगा।

मान लीजिए कि सरकार वास्तव में प्राथमिक अधिशेष को 3 प्रतिशत तक बढ़ाने के उपाय करती है। इसके लिए सरकारी खर्च में कटौती आवश्यक हो जाएगी। यह राजनीतिक रूप से महँगा साबित हो सकता है क्योंकि यह मतदाताओं को अलग–थलग कर सकता है। इसके अलावा, सरकारी खर्च में कमी से विकास दर में और गिरावट आ सकती है। ब्याज दर में वृद्धि और विकास दर में कमी के लिए अभी भी उच्च प्राथमिक अधिशेष की आवश्यकता हो सकती है।

किसी बिंदु पर सरकार प्राथमिक अधिशेष को और बढ़ाने में असमर्थ हो सकती है। ऐसी स्थिति से ऋण–व–जीडीपी अनुपात में वृद्धि होगी। इसका परिणाम एक ऋण विस्फोट होगा। अतः सबक स्पष्ट है। जब किसी सरकार को उच्च ऋण–व–जीडीपी अनुपात विरासत में मिलता है तो उसे समय के साथ उसे कम करने का लक्ष्य रखना चाहिए। इस तरह के एक लक्ष्य को प्राथमिक अधिशेष, उच्च विकास दर और कम वास्तविक ब्याज दर के संयोजन के माध्यम से हासिल किया जा सकता है।

बोध प्रश्न 2

1. ऋण और जीडीपी अनुपात में वृद्धि का कारण बनने वाले कारकों का उल्लेख कीजिए।

   .....

   .....

   .....

   .....

2. स्पष्ट करें कि सरकार के लिए ऋण संधारणीयता क्यों आवश्यक है।

.....

.....

.....

.....

9.5 रिकार्डियन तुल्यता प्रस्थापना

घाटे का बजट सरकार को अपने राजस्व से अधिक खर्च करने की अनुमति देता है। इस प्रक्रिया में सरकार ऋण संचित करती है, जिसे बाद में चुकाना पड़ता है। इस तरह की चुकौती व्यक्तियों पर उच्चतर कर लगाकर करनी पड़ती है। इस प्रकार घाटे का बजट उपभोक्ताओं की ओर से वर्तमान उपभोग एवं भावी उपभोग के बीच एक समझौताकारी समन्वय का अभिप्राय रखता है।

इकाई 5 और 6 में अंतर्कालिक उपभोग फलन के विषय में बात करते हुए हम यह मानकर चले थे कि उपभोक्ता विवेकशील और दूरंदेशी होते हैं। वे वर्तमान उपभोग की मात्रा का निर्णय करते समय आय केभावी प्रवाह को ध्यान में रखते हैं। इस प्राधार में, केन्जियन उपभोग फलन इस अर्थ में वास्तविक नहीं है कि वर्तमान उपभोग और वर्तमान आय के बीच कोई सरल और स्थिर संबंध नहीं होता।

इस पाठांश में हम चर्चा करेंगे कि सरकार का बजट घाटा लोगों के उपभोग निर्णय और अर्थव्यवस्था के कुल उत्पादन को कैसे प्रभावित करता है। इस संदर्भ में एक चरम दृष्टिकोण यह है कि न तो राजकोषीय घाटे का और न ही सार्वजनिक ऋण का कुल उत्पादन पर कोई प्रभाव पड़ता है। इसका तात्पर्य यह है कि सरकारी व्यय में वृद्धि का कुल माँग में वृद्धि और कुल उत्पादन में परिणामी वृद्धि पर वांछित प्रभाव संभवतः न हो। दूसरे शब्दों में, सरकार द्वारा प्रति–चक्रीय उपाय अप्रभावी हो सकते हैं। इस तर्क को *रिकार्डियन तुल्यता प्रस्थापना* के रूप में जाना जाता है।

नियोक्लासिकल अर्थशास्त्री (जिन पर चर्चा इकाई 12 में की जाएगी) रिकार्डियन तुल्यता के आधार पर केन्जियन राजकोषीय उपायों की प्रभावशीलता पर सवाल उठाते हैं। रिकार्डियन तुल्यता प्रस्थापना मुख्य रूप से रॉबर्ट बैरो (1974) से जुड़ी है।

नियोक्लासिकल अर्थशास्त्रियों ने केन्जियन राजकोषीय नीति की इस आधार पर आलोचना की कि कीन्स ने ह्रासमान प्रभाव की उपेक्षा की। किसी भी विस्तारकारी राजकोषीय नीति से ब्याज दर में वृद्धि होती है (देखें पाठांश 9.2.3)। ब्याज दर में वृद्धि से निजी निवेश पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। किसी भी खुली अर्थव्यवस्था में ब्याज दर में वृद्धि विदेशी पूँजी के प्रवाह को आकर्षित करती है, जिससे घरेलू मुद्रा में वृद्धि होती है। घरेलू मुद्रा के मूल्य में इस तरह की वृद्धि निर्यात पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है, जिससे देश की चालू खाता स्थिति बिगड़ती है (देखें BECC106 की इकाई 12)।

रॉबर्ट बैरो के नेतृत्व में *नियोक्लासिकल अर्थशास्त्रियों* ने एक अन्य स्तर पर केन्जियन राजकोषीय नीति की आलोचना की। वास्तव में, अर्थशास्त्रीबैरो ने 20वीं शताब्दी के आरंभ में डेविड रिकार्डो द्वारा प्रस्तुत दृष्टिकोण को सामने रखा था। रिकार्डो ने तर्क दिया था कि यदि लोग दूरंदेशी हों तो करों द्वारा अथवा ऋणपत्र जारी करने से सरकारी व्यय के वित्तपोषण का कुल माँग पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। बैरो के अनुसार, यदि प्रत्याशाओं का सृजन युक्तियुक्त प्रत्याशाओं के अनुसार होता है तो राजकोषीय नीति अप्रभावी साबित होगी।

चलिए, एक उदाहरण लेते हैं। मान लीजिए कि देश मंदी के दौर से गुजर रहा है और सरकार की योजना अपना खर्च बढ़ाने की हैय इसका उद्देश्य कुल माँग में वृद्धि करना है ताकि कुल उत्पादन में वृद्धि हो।

अब सरकार के सामने दो विकल्प हैं, यथा –

1. कर दरों में वृद्धि की जाए ताकि राजस्व प्राप्तियों में वृद्धि हो; तथा
2. वर्तमान दर पर कर बनाए रखें (अथवा, इसे घटाएँ), परंतु सरकारी खर्च बढ़ा दें ताकि घाटे का बजट सामने आए।

आइए, पहले प्रथम विकल्प पर गौर करें। मंदी के दौरान करों में वृद्धि से उपभोग व्यय में कमी आएगी। राजस्व प्राप्तियों में वृद्धि से सरकार को सार्वजनिक व्यय बढ़ाने में मदद मिलेगी। उपभोग में गिरावट की भरपाई सरकारी खर्च में वृद्धि से होती है। कुल मिलाकर, कुल माँग अपरिवर्तित रहेगी।

अब हम दूसरे विकल्प पर गौर करते हैं। घाटे के बजट में सार्वजनिक ऋण में वृद्धि शामिल होती है। लोग यह प्रत्याशा करने के लिए काफी विवेकशील हैं कि उन्हें भविष्य में उच्च करों का भुगतान करना होगा क्योंकि सरकार ऋण चुकाना शुरू कर देती है। अतएव, लोग शुरुआत से ही बचत करना शुरू कर देते हैं और इससे उपभोग व्यय में कमी आती है।

इस प्रकार, सरकारी व्यय में वृद्धि की भरपाई उपभोग व्यय में कमी करके की जाती है। कुल मिलाकर, कुल माँग में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। ध्यान देने की बात है कि दोनों नीति विकल्पों (करों में वृद्धि अथवा घाटे का वित्तपोषण) का कुल उत्पादन पर एक समान प्रभाव पड़ता है। 'रिकार्डियन तुल्यता' पदबंध उपर्युक्त के लिए ही आता है। नियोक्लासिकल दृष्टिकोण के अनुसार, कर दरों में कमी हमें अमीर नहीं बनाती है।

जब अर्थव्यवस्था उत्कर्ष के दौर से गुजर रही हो तो क्या रिकार्डियन तुल्यता की प्रस्थापना सत्य सिद्ध होती है? आइए, इस संदर्भ में उस मामले पर विचार करें जब सरकार एक संकुचनकारी राजकोषीय नीति का सहारा लेती है (जहाँ अधिशेष बजट होता है; राजस्व व्यय से कम होता है)। लोग प्रत्याशा करते है कि अधिशेष बजट की वजह से भविष्य में कर दरों में कमी आएगी। वे वर्तमान बचत के बारे में परेशान नहीं होते; वे उपभोग व्यय में वृद्धि कर देते हैं। इस प्रकार, इस मामले में भी कुल माँग में कोई परिवर्तन नहीं होगा।

रिकार्डियन तुल्यता प्रस्थापना की कुछ कमियाँ भी देखने में आती हैं, जो कि निम्नवत् हैं –

अनिश्चितता : यदि उपभोक्ता निश्चित रूप से प्रत्याशा करते हों कि वर्तमान कर कटौती से भविष्य में कर में वृद्धि होगी तो वे अधिकांश वृद्धिशील आय को बचाएँगे। कर कटौती नीतियाँ, बहरहाल, इस घोषणा के साथ नहीं आतीं कि भविष्य में करों में वृद्धि की जाएगी। सरकार की भावी नीति से जुड़ी अनिश्चितता के कुछ मूलतत्त्व होते हैं। सरकार का चुकौती कार्यक्रम जितना दूर दिखाई देता है, कर वृद्धि की भावी तिथि उतनी ही अनिश्चित होती है। अतएव, यह संभावना होती है कि उपभोक्ता भविष्य में कर वृद्धि की संभावना को अनदेखा कर देंगे और फिर वर्तमान उपभोग में वृद्धि करेंगे।

स्वार्थ : उपभोक्ताओं के पास एक सीमित जीवनकाल होता है। वे प्रत्याशा कर सकते हैं कि यदि कर वृद्धि दूर भविष्य में होने की उम्मीद हो तो भावी कर वृद्धि से पहले वे मर जाएँगे। आमतौर पर लोग अपनी मृत्यु के बाद अगली पीढ़ी पर लगने वाले कर की ज्यादा परवाह नहीं करते हैं। ऐसी स्थिति में रिकार्डियन तुल्यता काम नहीं करेगी।

अदूरदर्शिता : रिकार्डियन तुल्यता इस धारणा पर आधारित है कि लोग पूरी जानकारी और सही दूरदर्शिता रखते हैं। जब सरकार अपने वर्तमान खर्च का भुगतान करने के लिए उधार लेती है तो विवेकशील उपभोक्ता भविष्य में करों में वृद्धि पर ध्यान देते हैं। उपभोक्ताओं की ओर से ऐसा व्यवहार दुर्लभ होता है। लोग अदूरदर्शिता (निकट दृष्टिदोष) से पीड़ित होते हैं और वे सरकार के ऋण प्रबंधन तंत्र को पूरी तरह से नहीं समझते हैं।

अतः कर में वर्तमान कटौती उन्हें यह सोचने को प्रवृतकर सकती है कि उनकी जीवनपर्यंत आय बढ़ गई है। इस तरह की धारणा से वर्तमान उपभोग में वृद्धि होने की संभावना होती है।

बोध प्रश्न 3

1. रिकार्डियन तुल्यता का क्या अर्थ है? स्पष्ट करें।

   .....

   .....

   .....

   .....

2. स्पष्ट करें कि किसी सरकार द्वारा कर में कटौती हमें अमीर क्यों नहीं बना सकती है।

   .....

   .....

   .....

   .....

9.6 सारांश

राजकोषीय नीति बनाते समय नीति–निर्माताओं को कई कारकों पर विचार करने की आवश्यकता होती है। इस संबंध में राजकोषीय घाटे की सीमा बहुत महत्वपूर्ण होती है क्योंकि वह सार्वजनिक ऋण में वृद्धि करती है।

ऋण–व–सकल घरेलू उत्पाद अनुपात बहुत अधिक नहीं होना चाहिए। सार्वजनिक ऋण की संधारणीयता के लिए आर्थिक विकास दर ब्याज दर से अधिक होनी चाहिए।

इस इकाई में हमने राजकोषीय नीति पर कीन्स और नियोक्लासिकल अर्थशास्त्रियों के विचारों का अन्वेषण किया। रिकार्डियन तुल्यता प्रस्थापना से पता चलता है कि राजकोषीय नीति अप्रभावी भी रह सकती है।

9.7 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

बोध प्रश्न 1

1. सरकारी व्यय कुल माँग का एक महत्वपूर्ण घटक होता है। यह व्यापार चक्र के कारण बढ़ी कुल माँग में उतार–चढ़ाव को नियंत्रित कर सकता है। विस्तृत विवरण के लिए पाठांश 9.2 देखें।
2. नीति अंतराल चार प्रकार के होते हैं। पाठांश 9.2.2 का संदर्भ लें।
3. आयकर संग्रह किसी भी अर्थव्यवस्था में आर्थिक गतिविधि के स्तर में परिवर्तन के साथ बदलता रहता है। पाठांश 9.2.3 का संदर्भ लें।

बोध प्रश्न 2

1. ऋण–व–जीडीपी अनुपात को प्रभावित करने वाले तीन कारक हैं – ब्याज दर, विकास दर और प्राथमिक घाटे का जीडीपी से अनुपात। अधिक जानकारी के लिए पाठांश 9.4 देखें।
2. उच्च ऋण–व–जीडीपी अनुपात के लिए बड़े ब्याज भुगतान की आवश्यकता होती है। इसके लिए सार्वजनिक व्यय में कटौती की आवश्यकता हो सकती है। विवरण के लिए पाठांश 9.4.3 देखें।

बोध प्रश्न 3

1. रिकार्डियन तुल्यता प्रस्थापना से पता चलता है कि सरकार की राजकोषीय नीति अप्रभावी रह सकती है। विवरण के लिए पाठांश 9.5 देखें।

2. यदि प्रत्याशाओं का सृजन युक्तियुक्त अपेक्षाओं के अनुसार होता है तो कर कटौती से उपभोग व्यय में वृद्धि नहीं हो सकती है। परिवार अपनी बचत बढ़ा सकते हैं ताकि भविष्य में अधिक करों का भुगतान किया जा सके।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 10 मौद्रिक नीति*

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 मुद्रा–परिमाण सिद्धांत

10.2.1 मुद्रा की तटस्थता

10.2.2 ब्याज दर में परिवर्तन का प्रभाव

10.2.3 मौद्रिक हस्तांतरण क्रियातंत्र

10.3 नियम बनाम विवेक

10.3.1 नीति अंतराल

10.3.2 प्रतिष्ठा और साख

10.3.3 मौद्रिक नीति नियम

10.4 हानि फलन

10.5 मात्रात्मक सुकरण

10.6 मौद्रिक नीति की कमियाँ

10.7 सार संक्षेप

10.8 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

10.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य होंगे कि –

- मुद्रा–परिमाण सिद्धांत के पक्ष में निहित विचारों पर चर्चा कर सकें;
- मौद्रिक नीति संचालन के विभिन्न माध्यम (अथवा साधन) पहचान सकें;
- मौद्रिक नीति के उद्देश्य समझा सकें;
- स्पष्ट कर सकें कि नीतिगत नियम विवेकाधीन नीतियों से किस प्रकार बेहतर होते हैं;
- ब्याज दर निर्धारण पर टेलर का नियम स्पष्ट कर सकें;
- मात्रात्मक सुकरण की उपयोगिता का वर्णन कर सकें; तथा
- मौद्रिक नीति की कमियाँ पहचान सकें।

10.0 प्रस्तावना

प्रारंभिक समष्टि अर्थशास्त्र पर आधारित पाठ्यक्रम BECC 103 की इकाई 6 में हमने मौद्रिक नीति के उद्देश्यों और साधनों का संक्षिप्त परिचय प्राप्त किया था। इस संदर्भ में हमने मुद्रास्फीति लक्ष्यीकरण और मात्रात्मक सुकरण पर चर्चा की थी। इस इकाई में हम उन्हीं में से कुछ बातों को दोहराएँगे और फिर अपनी चर्चा को नीति–निरूपण के पहलू की ओर ले जाएँगे। मौद्रिक नीति का अर्थ होता है – किसी अर्थव्यवस्था में मुद्रा आपूर्ति का स्तर प्रभावित करने के लिए केंद्रीय बैंक द्वारा विविध साधनों का प्रयोग किया जाना। आम तौर पर मौद्रिक नीति के दो साधन देखने में आते हैं, यथा –

*डॉ. कौस्तुभ बारिक, इग्नू एवं डॉ. कृष्ण कुमार, श्री वैंकटेश्वर कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय ।

(i) मात्रात्मक साधन, और

(ii) गुणात्मक साधन।

प्रथम अर्थात् मात्रात्मक साधनों को 'सामान्य साधन' भी कहा जाता है क्योंकि ये अर्थव्यवस्था में मुद्रा आपूर्ति की मात्रा अथवा परिमाण से संबंध रखते हैं। तदनुसार, ये नीतिगत साधन अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों अथवा सामाजिक समूहों के बीच कोई भेदभाव नहीं करते। इस श्रेणी में आने वाले प्रमुख साधन हैं –

a) ब्याज दर,

b) मुक्त बाजार संक्रियाएँ,

c) नकद आरक्षित अनुपात (CRR), और

d) सांविधिक चलनिधि अनुपात (SLR)।

दूसरी ओर, गुणात्मक साधन 'चयनात्मक साधन' भी कहलाते हैं। इन्हें ऋण के विभिन्न प्रयोगों के बीच विभेद करने के लिए प्रयोग किया जाता है। प्रमुख चयनात्मक ऋण नियंत्रण साधन हैं –

a) चयनात्मक ऋण नियंत्रण,

b) न्यूनतम राशि,

c) उधार राशि नियतन,

d) नैतिक प्रत्यायन, तथा

e) प्रत्यक्ष कार्रवाई।

इन सभी साधनों पर हम पाठ्यक्रम BECC 103 की इकाई 6 में विस्तृत चर्चा कर चुके हैं।

वह मौद्रिक नीति जो अनेक देशों द्वारा अपनाई जाती है, समय के साथ विकसित हुई है। इन दिनों केंद्रीय बैंक के अधिकार में प्रमुख साधन ब्याज दर है। आपने देखा ही होगा कि व्यापार से जुड़े लोगों के साथ–साथ बैंक कर्मी भी प्रायः देश के केंद्रीय बैंक यानी भारतीय रिजर्व बैंक (RBI) द्वारा मौद्रिक नीति की घोषणा किए जाने की प्रतीक्षा में रहते हैं। किसी भी मुक्त अर्थव्यवस्था में केंद्रीय बैंक के समक्ष चुनौतियों का अंबार लगा होता है। दरअसल, आधुनिक युग में वित्तीय स्थिरता केंद्रीय बैंकों का एक अहम सरोकार कहलाती है।

'सत्तर के दशक तक यह माना जाता था कि केंद्रीय बैंक अर्थव्यवस्था में मुद्रा की आपूर्ति नियंत्रित करने में सक्षम सिद्ध होगा। तिस पर भी अनेक अर्थशास्त्री ऐसे थे जो ऐसा कर पाने में केंद्रीय बैंक की क्षमता पर शंका व्यक्त किया करते थे। बहरहाल, वर्ष 1986–2006 की अवधि में अधिकांश विकसित देशों में 'आर्थिक संवृद्धि और मुद्रास्फीति' के क्षेत्र में स्थिरता देखने में आई। इस अवधि को प्रायः 'ग्रेट मॉडरेशन' अर्थात् 'महा नियमन' की संज्ञा दी जाती है क्योंकि काफी हद तक यह माना जाने लगा था कि हम अर्थव्यवस्था नियंत्रित करने की कला में सिद्धहस्त हो गए हैं। वर्ष 2007–2009 के दौरान जब तक देशों के सामने विश्व आर्थिक संकट नहीं आया था, आत्यंतिक आर्थिक अस्थिरता बीते कल की बात मानी जाती थी। इस वित्तीय संकट के पश्चात वर्ष 2010 से अनेक देश 'संरक्षणवाद' का सहारा लेते आए हैं, जिसने वैश्वीकरण को प्रतिकूलतः प्रभावित किया है।

विश्व भर में मौद्रिक नीति के महत्व बढ़ने की वजह से ही अब केंद्रीय बैंक प्रमुखों (भारत के प्रसंग में RBI–प्रमुख 'गवर्नर' कहलाता है) को अधिक महत्व दिया जाने लगा है। अधिकांश केंद्रीय बैंक अपने वैधानिक प्रादेशों से नियंत्रित होते हैं, जो कि न सिर्फ महँगाई

का स्तर घटाने बल्कि बेरोजगारी का स्तर भी नीचा बनाए रखने के लिए होते हैं। दरअसल, शुरुआती दिनों में (वर्ष 1980 तक) अधिकांश केंद्रीय बैंक अपने नानाविध उद्देश्यों की पूर्ति में ही लगे रहते थे, जिनमें शामिल थे – मूल्य स्थिरता, रोजगार सृजन और आर्थिक संवृद्धि। बहरहाल, 'अस्सी के दशक से उसका ध्यान 'इन्फ्लेशन टारगेटिंग' अर्थात् मुद्रास्फीति को लक्ष्य बनाने पर अधिक रहने लगा है।

अन्य प्राथमिकताओं को दरकिनार कर मुद्रास्फीति लक्ष्यीकरण पर ही ध्यान दिया जाना 'अस्सी के दशक में निभाई गई अपनी भूमिका से हमें अमेरिका की केंद्रीय बैंक प्रणाली 'फेडरल रिजर्व सिस्टम' ने सिखलाया। दरअसल, 'सत्तर के दशक में 'तेल संकट' झेलने के उपरांत अमेरिका ने एक प्रकार से अभूतपूर्व महँगाई का सामना किया था। ऐसे में फेडरल रिजर्व सिस्टम के तत्कालीन अध्यक्ष पॉल वॉकर ने ब्याज दर में बड़ी वृद्धि कर दी। इस ब्याज–दर वृद्धि के परिणामस्वरूप यद्यपि उत्पादन स्तर गिरा, मुद्रास्फीति की दर घट गई। इस संदर्भ में ही मुद्रास्फीति लक्ष्यीकरण को केंद्रीय बैंकों के नीति क्षेत्र में स्वीकार्यता हासिल हुई।

वॉकर की मूल्य स्तर घटाने के लिए ब्याज दर बढ़ा देने की अवस्फीतिकारी रणनीति को व्यापक पहचान मिली। अब 'अस्सी के दशक से ही केंद्रीय बैंक संचालकों का ध्यान रोजगार सृजन के उद्देश्य से भटक कर मुद्रास्फीति लक्ष्यीकरण पर अधिक रहने लगा है। आप देखेंगे कि अमेरिका में ब्याज–दर वृद्धि के परिणामस्वरूप अनेक लैटिन अमेरिकी देश (जैसे ब्राजील, अर्जेंटीना और मैक्सिको) अपने अंतर्राष्ट्रीय ऋण दायित्वों का निर्वहन नहीं कर सके।

अनेक लैटिन अमेरिकी देशों ने 'साठ व 'सत्तर के दशक में अपने यहाँ औद्योगीकरण करने के लिए बड़ी मात्रा में ऋण लिया था। जब 'अस्सी के दशक में ब्याज दर बढ़ी तो अपने कर्ज चुकाने के लिए इन देशों पर आर्थिक बोझ बढ़ा। अर्थशास्त्र और इतिहास के विद्यार्थियों को यह बात अच्छी तरह याद है कि 'अस्सी के दशक में अंतर्राष्ट्रीय ऋण संकट का लैटिन अमेरिका की आर्थिक संवृद्धि पर किस प्रकार हानिकारक प्रभाव पड़ा था। इस बात का संबंध काफी हद तक अमेरिका और यूरोपीय देशों द्वारा अपनाई जा रही अवस्फीतिकारी रणनीति से रहा।

हाल के वर्षों में भी आपने देखा होगा कि विकासशील अर्थव्यवस्थाएँ विकसित अर्थव्यवस्थाओं द्वारा ब्याज दर में वृद्धि के जवाब में वित्त बाजारों से पूँजी पलायन (विदेशी पूँजी का बहिर्वाह) किए जाने की गवाह रही हैं।

10.2 मुद्रा–परिमाण सिद्धांत

मुद्रा–परिमाण सिद्धांत (पारम्परिक अवधारणाओं पर आधारित होने के कारण जिसे प्रायः 'शास्त्रीय मुद्रा–परिमाण सिद्धांत' भी कहा जाता है) की उत्पत्ति स्कॉटलैंड के दार्शनिक डेविड ह्यूम के लेखों से हुई, ऐसा माना जाता है। ह्यूम ने इस सिद्धांत का उल्लेख वर्ष 1749 में प्रकाशित अपनी पुस्तक *'प्राइस–स्पिशी फ्लो मैकेनिज्म'* में किया, जिसमें उसने स्वर्णमान की कार्य–पद्धति संबंधी व्याख्या विकसित की। स्वर्णमान, जैसा कि आप जानते ही हैं, एक ऐसी मौद्रिक प्रणाली रही है जिसमें किसी देश की मुद्रा स्वर्ण धातु के लिहाज से कोई नियत मूल्य रखती है।

ह्यूम के अनुसार, यदि किसी देश के पास आयात–निर्यात का अंतर धनात्मक है (अर्थात् उसका निर्यात उसके आयात से अधिक है) तो सोना उस देश में आएगा। तदनुसार, मुद्रा आपूर्ति बढ़ेगी, जो कि उसे फिर मुद्रास्फीति की ओर ले जाएगा। इसी प्रकार, यदि उस देश का व्यापार संतुलन घाटे में होता है तो घाटे के बराबर मान का सोना देश से बाहर

जाएगा। ऐसे में यदि सरकार द्वारा कोई प्रतिरोधी कदम नहीं उठाए जाते तो मुद्रा आपूर्ति घट जाएगी, जो कि फिर मूल्य स्तर में गिरावट की ओर ले जाएगा।

बीसवीं सदी के पूर्वार्ध में इर्विन फिशर द्वारा मुद्रा–परिमाण सिद्धांत एक विनिमय समीकरण के रूप में प्रस्तुत किया गया। संकेत रूप में इसे निम्नवत् दर्शाया जाता है –

$$MV = PY$$

जहाँ M मुद्रा आपूर्ति है, V मुद्रा प्रसार की गति है, P मूल्य स्तर है, और Y अर्थव्यवस्था में प्रस्तुत उत्पादन का स्तर है।

क्लासिकी अर्थशास्त्री यह मान कर चलते थे कि कीमतों और वेतन दर में लोचता के कारण ही अर्थव्यवस्था में पूर्ण नियोजन की स्थिति होती है। तदनुसार, Y पूर्ण नियोजन स्तर पर नियत होता है, और V (मुद्रा की कोई भी इकाई, माना, कोई करंसी नोट जितनी बार नये हाथों में जाता है) प्रायः अचर होता है। इस प्रकार, मुद्रा आपूर्ति में कोई भी वृद्धि मूल्य स्तर बढ़ा देगी।

10.2.1 मुद्रा की तटस्थता

क्लासिकी अर्थशास्त्र के पक्षधर कहते हैं कि मुद्रा इस अर्थ में तटस्थ होती है कि यह कीमत, वेतन दर, विनिमय दर आदि मौद्रिक चरों को समान रूप से प्रभावित करती है। दूसरी ओर, यह उत्पादन और रोजगार जैसे वास्तविक चरों को कतई प्रभावित नहीं करती। उत्पादन मुद्रा आपूर्ति से इसलिए प्रभावित नहीं होता कि अवधारणा के अनुसार, अर्थव्यवस्था में सदैव पूर्ण नियोजन की स्थिति रहती है। कीमतों और वेतन दरों को लोचदार माना जाता है। यदि श्रमिक आपूर्ति श्रमिक माँग से अधिक हुई तो वेतन दर घटेगी। दूसरी ओर, यदि श्रमिक माँग श्रमिक आपूर्ति से अधिक हुई तो वेतन दर बढ़ेगी। इसी प्रकार, कीमतें आपूर्ति और माँग जैसी बाजार शक्तियों द्वारा तय की जाती हैं। आनुभविक आँकड़ों पर आधारित कुछ अध्ययन प्रमाणित करते हैं कि मुद्रा दीर्घ अवधि में तटस्थ होती है। तदनुसार, यह कोई दीर्घावधि दृश्यघटना ही हो सकती है। अल्प अवधि में, बहरहाल, मुद्रा की तटस्थता को किसी भी आनुभविक अध्ययन से कोई खास समर्थन प्राप्त नहीं होता। इस प्रकार, अल्प अवधि में मुद्रा तटस्थ नहीं हो सकती।

मुद्रा आपूर्ति में कोई भी वृद्धि दीर्घ अवधि में संसाधन–आवंटन स्तर में अथवा प्रस्तुत उत्पादन के मान में किसी भी परिवर्तन के बिना मूल्य स्तर में किसी आनुपातिक वृद्धि की ओर प्रवृत्त करती है। कीमतों में वृद्धि जब तक पूर्ण प्रत्याशित रहती है, कुल मुद्रा राशि में कोई भी वृद्धि सभी मौद्रिक मूल्यों में किसी समानुपातिक वृद्धि की ओर ले जाती है। दीर्घ अवधि में इसका किसी भी वास्तविक चर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

एक लंबे समय तक अर्थवादी नीतियाँ (मुद्रा–परिमाण सिद्धांत के पुनर्कथन से प्रेरित) केंद्रीय बैंकिंग के क्षेत्र में प्रबल रूप से प्रभावकारी रही हैं। एक बार मिल्टन फ्रीडमैन ने देखा कि मुद्रास्फीति एक मौद्रिक

दृश्यघटना के रूप में सदैव और सर्वत्र व्यापी है। वास्तव में, वैश्विक वित्त संकट उत्पन्न होने तक केंद्रीय बैंकों का ध्यान मुद्रा आपूर्ति की वृद्धि दर नियंत्रित करने पर ही रहा। इस संबंध में उक्त अर्थशास्त्री की अभिधारणा के अनुसार, मुद्रा आपूर्ति मात्रिक जीडीपी की वृद्धि दर पर ही बढ़नी चाहिए।

मुद्रा की तटस्थता के अलावा, एक अन्य संकल्पना है जिसे 'मुद्रा की परम तटस्थता' कहा जाता है। मुद्रा की तटस्थता से कहीं अधिक सशक्त कथन होते के नाते इसका कहना है कि मुद्रा आपूर्ति की वृद्धि दर में परिवर्तनों का वास्तविक चरों पर कोई असर नहीं होता। मान लीजिए कि किसी देश में मुद्रा आपूर्ति 3 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से बढ़ रही है।

अचानक केंद्रीय बैंक इसे बढ़ाकर 5 प्रतिशत प्रति वर्ष कर दिए जाने का फैसला ले लेता है। क्या इसका उत्पादन वृद्धि पर कोई प्रभाव पड़ेगा? इस विषय पर आनुभविक परिणाम, बहरहाल, अस्पष्ट ही हैं।

10.2.2 ब्याज दर में परिवर्तन का प्रभाव

अर्थव्यवस्था में मुद्रास्फीति दर और विकास दर के विषय में प्रत्याशाओं (इस पाठ्यक्रम की इकाई 4 व 5 देखें) को ध्यान में रखकर ही केंद्रीय बैंक ब्याज दर तय करता है। आपको मुद्रा–परिमाण सिद्धांत से ज्ञात ही है कि 'मात्रिक ब्याज दर = वास्तविक ब्याज दर + प्रत्याशित मुद्रास्फीति दर'। विश्व भर में मौद्रिक प्राधिकरण ही ब्याज दरें तय करते हैं और अपने मुद्रा भंडार को विद्यमान माँग के अनुसार समंजित करते हैं।

माना कि किसी नीति ने ब्याज दर में वृद्धि कर उसे i_0 से i_1 पर ला दिया। इसके फलस्वरूप मुद्रा भंडार M_0 से घटकर M_1 पर आ जाएगा (देखें चित्र 10.1)।

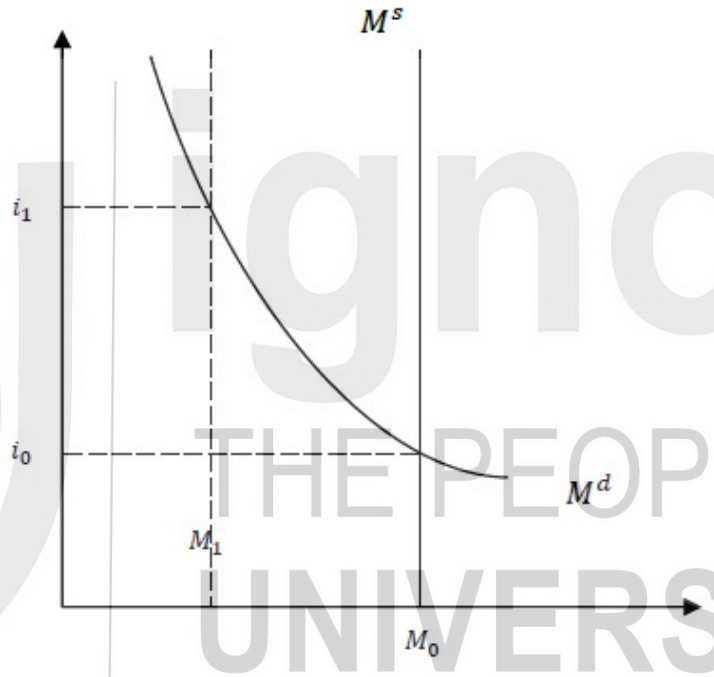

चित्र 10.1: ब्याज दर में वृद्धि का प्रभाव

यह कैसे संभव होता है? ब्याज दर में वृद्धि निवेश व्यय के साथ–साथ उपभोग व्यय में भी कमी ला देती है। इसके परिणामस्वरूप आय का स्तर घट जाता है, और इस वजह से मुद्रा की माँग (M^d) में कभी आ जाती है। अब मुद्रा आपूर्ति भंडार (M^s) को नयी मुद्रा माँग के अनुरूप समंजित करना पड़ता है।

10.2.3 मौद्रिक हस्तांतरण क्रियातंत्र

मान लीजिए कि केंद्रीय बैंक मुद्रा आपूर्ति बढ़ा देता है। इससे अर्थव्यवस्था में पूँजी की तरलता बढ़ जाएगी और ब्याज दर घट जाएगी। ब्याज दर में कोई भी गिरावट अर्थव्यवस्था में अनेक समष्टि–अर्थशास्त्रीय चरों को प्रभावित कर सकती है।

इन प्रभावों को प्रायः 'हस्तांतरण माध्यम' अथवा 'हस्तांतरण क्रियातंत्र' की संज्ञा दी जाती है। मौद्रिक हस्तांतरण क्रियातंत्र से हमें यह ज्ञान होता है कि किसी मौद्रिक चर का प्रभाव कैसे हस्तांतरित होता है अथवा अन्य चरों तक पहुँचता है। इस प्रक्रिया में महत्वपूर्ण माध्यम निम्नवत् दर्शाए जा सकते हैं –

(i) **ऋण माध्यम** : ब्याज दर में कोई भी गिरावट ऋण की माँग में वृद्धि की ओर ले जाएगी। ऐसी परियोजनाएँ जिन्हें पहले अव्यवहार्य माना गया था, निम्नतर पूँजी लागत के कारण अब व्यवहार्य मानी जा सकती हैं। ऐसे परिवार जिन्होंने ऊँची ब्याज दर की वजह से कोई ऋण न लिया हो, अब ऋण देने का विचार बना सकते हैं। ऐसे क्रियाकलाप फर्मों और परिवारों के हाथ में क्रय–शक्ति दे देंगे। फर्में और परिवार इस अतिरिक्त मुद्रा को विभिन्न वस्तुओं और सेवाओं पर खर्च करेंगे। माँग में वृद्धि के परिणामस्वरूप साम्य उत्पादन बढ़ेगा (यदि अर्थव्यवस्था साम्य उत्पादन स्तर से नीचे काम कर रही हो)। इस प्रकार, यह परंपरागत धारणा कि मुद्रा आपूर्ति में वृद्धि केवल मूल्य स्तर में वृद्धि की ओर ही प्रवृत्त करेगी, सच नहीं हो सकती।

(ii) **विनिमय दर माध्यम** : ऋण माध्यम से इतर, मौद्रिक हस्तांतरण क्रियातंत्र का एक अन्य माध्यम 'विनिमय दर माध्यम' के जरिए सामने आता है। जब ब्याज दर घटेगी तो पूँजी का बहिर्वाह होगा — विदेशी निवेशक ब्याज की उच्चतर दर पेश कर रहे अन्य देशों में निवेशार्थ अपना धन निकालेंगे। यह विदेशी मुद्रा की कमी की ओर प्रवृत्त करेगा और घरेलू मुद्रा का अवमूल्यन होगा। विनिमय दर के अवमूल्यन के कारण, बहरहाल, निर्यात की प्रतिस्पर्धात्मकता बढ़ जाएगी। साथ ही, आयात महँगा हो जाएगा। निवल निर्यात में वृद्धि कुल माँग में वृद्धि की ओर प्रवृत्त करेगी, जो कि फिर उत्पादन के साम्य स्तर में वृद्धि की ओर अग्रसर करेगा। ऐसी स्थिति तभी आएगी जब घरेलू मूल्य स्तर अवमूल्यन के साथ नही बढ़ेंगे। बहरहाल, आप देखेंगे कि निर्यात और आयात हेतु माँग की लोचता एकलता से अधिक ही होनी चाहिए। तदनुसार, विनिमय दर माध्यम तभी कारगर होगा जब उक्त शर्तें पूरी होंगी।

(iii) **पूँजी की लागत** : पुनः एक अन्य माध्यम पूँजी लागत के जरिए है। जब ब्याज दरें घट जाती हैं तो शेयर खरीदने हेतु वित्तीयन की सहजता बढ़ जाती है। यह फर्मों के शेयर (अर्थात् कम्पनी की वह पूँजी जो भागों में बँटी रहती है) भाव में वृद्धि की ओर अग्रसर करता है। दूसरे शब्दों में, फर्म का बाजार मूल्य प्रतिस्थापन लागत की तुलना में बढ़ जाता है। इससे फर्में नया निवेश कर और विस्तार करने को प्रोत्साहित होती हैं। इसके परिणामस्वरूप उत्पादन स्तर में वृद्धि होती है। इसके फलस्वरूप उपभोग व्यय में 'अनपेक्षित लाभ' प्रभाव भी दिखाई पड़ सकता है। जब शेयरों का भाव बढ़ता है तो परिवार अपने स्वामित्व वाले शेयरों के भाव में वृद्धि के रूप में लाभ लेने को भी तत्पर हो जाते हैं। इसके परिणामस्वरूप उपभोग व्यय स्तर को बढ़ाता 'समृद्धि प्रभाव' नजर आने लगता है।

ये सभी माध्यम मौद्रिक हस्तांतरण क्रियातंत्र के मार्ग अवश्य हैं, परंतु अनेक कारणों से ये हमेशा कारगर सिद्ध नहीं होते। विशेष रूप से, जब अर्थव्यवस्था में तरल पूँजी की व्यापक माँग होती है और वह तरलता के जाल में फँसी होती है तो मौद्रिक नीति प्रभावहीन हो जाती है। कोई भी मौद्रिक चर (मुद्रा आपूर्ति) किसी भी वास्तविकता चर (उत्पादन) को प्रभावित करता है, परंतु ऐसा सदैव होना आवश्यक नहीं। ब्याज दर घट जाने के बावजूद यह आवश्यक नहीं कि परिवारों और फर्मों की ओर से ऋण की माँग में वृद्धि हो ही। उदाहरण के लिए, यदि भावी आय के विषय में प्रत्याशाएँ अनिश्चित हों तो फर्में शायद अपनी मुद्रा की माँग न बढ़ाएँ। इसी प्रकार, निकट भविष्य में यदि आय निश्चित न हो तो परिवारों को अतिरिक्त धन की किंचित् ही आवश्यकता होगी।

इसके अलावा, यदि केंद्रीय बैंक ब्याज दर घटा भी दे तो आवश्यक नहीं कि वह वाणिज्यिक बैंकों द्वारा ऋणी वर्ग तक पहुँचाई ही जाए। वाणिज्यिक बैंक निश्चय ही ऐसा करने को अनिच्छुक होंगे, खासकर जब बैंकों के पास बड़ी मात्रा में गैर–निष्पादक परिसंपत्तियाँ (डूबी हुई रकम) हों।

बोध प्रश्न 1

1) मुद्रा की तटस्थता संबंधी संकल्पना की रूपरेखा प्रस्तुत करें।

.....

.....

.....

.....

.....

2) मौद्रिक हस्तांतरण क्रियातंत्र के विभिन्न माध्यम बताएँ।

.....

.....

.....

.....

.....

10.3 नियम बनाम विवेक

जैसा कि आपको ज्ञात ही है, केन्जियन अर्थशास्त्र ने सरकार के लिए एक कार्यकर्ता की भूमिका विहित की। जब अर्थव्यवस्था व्यापार मंदी के दौर से गुजर रही हो तो सरकार को सार्वजनिक निवेश बढ़ा देना चाहिए। निवेश में वृद्धि कुल माँग में वृद्धि करेगी, जो कि फिर कुल उत्पादन को बढ़ा देगी। दूसरी ओर, यदि अर्थव्यवस्था 'अतितप्त' हो – अर्थात् वह पूर्ण–नियोजन स्तर पर काम कर रही हो और कुल माँग फिर भी बढ़ रही हो – तो सरकार को सार्वजनिक निवेश घटा देना चाहिए ताकि कुल माँग स्थिर रहे। इस प्रकार, केन्जियन अर्थशास्त्र यह मानकर चलता है कि सरकार व्यापार चक्रों का प्रभाव सीमित कर सकती है। उसके अनुसार, जहाँ तक कि राजकीय व्यय का सवाल है, सरकार को सलाह है कि वह अपने विवेक का प्रयोग करना सीखे।

जबकि केन्जियन अर्थशास्त्र ने सरकार के लिए एक कर्मठ कार्यकर्ता की भूमिका विहित की, नवशास्त्रीय अर्थशास्त्रियों ने कहा कि शासकीय नीति कुछ विशिष्ट नियमों के आधार पर होनी चाहिए, न कि नीति–निर्माताओं के विवेकाधीन (विभिन्न समष्टि–अर्थशास्त्रीय विचारधाराओं के विषय में हम इस पाठ्यक्रम की इकाइयों 11 और 12 में पढ़ेंगे)।

10.3.1 प्रतिष्ठा और साख

कोई भी राजकीय नीति इस अर्थ में विश्वसनीय होनी चाहिए कि सरकार अपने नीतिगत उपायों के प्रति वचनबद्ध होती है। किसी घोषित नीति की विश्वसनीयता दो कारकों पर निर्भर होती है, यथा –

(i) अपना वचन पूरा करने हेतु किसी सरकार की क्षमता के संदर्भ में पिछला अनुभव, तथा

(ii) जन सामान्य की अपेक्षाएँ कि सरकार अपनी नीति पर कायम रहेगी।

फर्मों द्वारा निवेश निर्णय और परिवारों द्वारा बचत निर्णय विश्वसनीयता के आधार पर ही लिए जाते हैं। इस संदर्भ में, आप देखेंगे कि कुछ सरकारों ने विगत वर्षों में 'गुड गवर्नेंस' अर्थात् सुशासन के लिहाज से अपनी साख (reputation) बनाई है।

कोई भी सरकार अपने उद्देश्य सबसे बेहतर ढंग से पूरे करना चाहती है। मान लीजिए कि सरकार घोषणा करती है कि किसी क्षेत्र विशेष, जैसे पर्यटन, को वह पाँच वर्ष के लिए कर अवकाश (अर्थात् कर–मुक्त अवधि) प्रदान करेगी। यह पर्यटन के क्षेत्र में निवेशार्थ फर्मों के लिए प्रोत्साहन के रूप में काम करेगा। दो वर्ष बाद, यदि सरकार को लगता है कि पर्याप्त निवेश किया जा चुका है तो अब वह उस क्षेत्र पर करारोपण कर कर राजस्व बढ़ा सकती है। इससे सरकार की विश्वसनीयता पर आँच आती है।

10.3.2 मौद्रिक नीति नियम

अर्थव्यवस्था में स्थिरता कायम रखने के लिए, अर्थशास्त्रियों के अनुसार, कुछ 'नीतिगत नियमों' का पालन किया जाना चाहिए। सरल शब्दों में, इसका अर्थ है कि शासकीय कार्रवाइयाँ कुछ विशिष्ट नियमों के अनुसार ही की जानी चाहिए।

आइए, वास्तविक जीवन से एक उदाहरण लें। आपने देखा ही होगा कि शहरों के बाहरी किनारे प्रायः अवैध निर्माण से अटे होते हैं। ये मकान गुपचुप तरीके से बनाए जाते हैं। इन घरों के धारक फिर सरकार से गुहार लगाते हैं कि उस निर्माण को वैध घोषित कर दिया जाए। कुछ दिनों में, चुनाव आते ही तमाम राजनीतिक दल एक दूसरे से बढ़कर वादे करने लगते हैं कि यदि वे सत्ता में आए तो उस अवैध निर्माण को नियमित कर देंगे।

इसी प्रकार, राजनीतिक दल प्रायः सत्ता में आते ही कृषि ऋण माफ कर दिए जाने का वादा करते हैं। ऐसे वायदे लोगों को अवैध बस्तियों में मकान ले लेने को प्रेरित करते हैं।

इसी तरह, लोग कृषि ऋण ले लेते हैं और उसे इस उम्मीद से नहीं चुकाते कि सरकार ऋण माफ कर देगी।

मान लीजिए कि देश का कानून है कि किसी भी परिस्थिति में अवैध निर्माण नियमित नहीं किया जाएगा अथवा ऋण माफ नहीं किया जाएगा। ऐसे नियम ही उपर्युक्त व्यवहार के प्रति लोगों को निर्स्त्साहित करेंगे।

अब एक उदाहरण अर्थशास्त्र से लेते हैं। केंद्र सरकार और भारतीय रिजर्व बैंक के बीच एक समझौते के अनुसार बैंक को देश में मुद्रास्फीति की दर 4 प्रतिशत प्रति वर्ष पर बनाए रखने होगी, जहाँ 2 प्रतिशत से 6 प्रतिशत का उतार–चढ़ाव स्वीकार्य होगा। तदनुसार, बैंक ऐसे कदम उठाएगा कि मुद्रास्फीति की दर 2 प्रतिशत से 6 प्रतिशत की सीमा से बाहर न जाए।

इस प्रकार, 'मौद्रिक नीति नियम' को सरकार के एक प्रतिक्रिया फलन के रूप में देखा जा सकता है। यह एक गणितीय फलन है जो बतलाता है कि केंद्रीय बैंक कुछ समष्टि–अर्थशास्त्रीय चरों के प्रत्युत्तर में ब्याज दर कैसे निर्धारित किया जाता है।

जैसा कि आप जानते हैं, उच्चतर ब्याज दर निवेश को हतोत्साहित करती हैय जिससे आर्थिक विकास की गति धीमी पड़ जाती है। यदि मुद्रास्फीति की दर ऊँची हुई तो ब्याज दर भी ऊँची ही रखनी होगी। यदि वास्तविक विकास दर संभावित विकास दर से ऊँचा हुआ तो भी ब्याज दर ऊँची ही रखनी होगी। इस इकाई में आगे हम टेलर के नियम पर चर्चा करेंगे, जो कि मौद्रिक नीति नियम का एक विशिष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है।

बोध प्रश्न 2

1) मौद्रिक नीत नियम कि आवश्यकता को समझाइए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) किसी अर्थव्यवस्था के लिए विश्वसनीयता और प्रतिष्ठा का क्या महत्व होता है?

.....

.....

.....

.....

.....

10.4 हानि फलन

किसी भी मौद्रिक नीति का मुख्य उद्देश्य मुद्रास्फीति को लक्ष्य बनाकर चलना ही होता है, परंतु मुद्रास्फीति का नियंत्रण आर्थिक संवृद्धि और विकास की कीमत पर कदापि नहीं होना चाहिए। आपको 'बेरोजगारी की स्वाभाविक दर' संबंधी संकल्पना का भी ज्ञान है। इसके अनुसार, श्रमबल का एक छोटा–सा हिस्सा प्रायः बेरोजगार रहता है क्योंकि कुछ श्रमिक एक नौकरी छोड़कर दूसरी पकड़ने की प्रक्रिया में लगे ही रहते हैं। किसी भी देश के संभावित उत्पादन में इस प्रकार की बेरोजगारी की स्वाभाविक दर का हमेशा ध्यान रखा जाता है।

चलिए, मान लेते हैं कि y_e और π^T क्रमशः बेरोजगारी की स्वाभाविक दर पर उत्पादन और मुद्रास्फीति की लक्षित दर दर्शाते हैं। हम यह मानकर चलते हैं कि किसी देश का आर्थिक कल्याण तब अधिकतम होता है जब अर्थव्यवस्था y_e और π^T पर काम कर रही हो। इसका अर्थ है कि अर्थव्यवस्था (y_e , π^T) हासिल कर लेने पर अपने 'कल्याण बिंदु' पर होती है और यहाँ से तनिक भी विचलन उसके कल्याण में कमी ला देता है।

मान लीजिए कि उत्पादन और मुद्रास्फीति क्रमशः y और π हैं। तदनुसार, यदि लक्षित मुद्रास्फीति 4 प्रतिशत और वास्तविक मुद्रास्फीति 2 प्रतिशत हो तो विचलन $(\pi - \pi^T) = (2 - 4) = -2$ प्रतिशत होगा। यदि मुद्रास्फीति 4 प्रतिशत से अधिक अथवा 4 प्रतिशत से कम होगी तो कल्याण हानि देखने में आएगी। इस प्रकार, केंद्रीय बैंक फलन $(\pi - \pi^T)^2$ को न्यूनतम करना चाहेगा। इसी प्रकार, केंद्रीय बैंक वास्तविक उत्पादन (y) में संभावित उत्पादन (y_e) से विचलन टालना चाहेगा। तदनुसार, वह फलन $(y - y_e)^2$ को न्यूनतम करेगा।

यदि हम उपर्युक्त दोनों पदों मिला दें तो केंद्रीय बैंक का हानि फलन निम्नवत् दर्शाया जाएगा –

$$L = (y - y_e)^2 + (\pi - \pi^T)^2 \quad \ldots (10.1)$$

अब केंद्रीय बैंक अपने–अपने लक्ष्य से वास्तविक उत्पादन और वास्तविक मुद्रास्फीति में विचलन से प्राप्त समीकरण (10.1) को न्यूनतम कर कल्याण हानि निम्नतम कर देगा।

उक्त समीकरण (10.1) में हम उत्पादन अंतराल $(y - y_e)$ और मुद्रास्फीति में विचलन $(\pi - \pi^T)$ को समान महत्व देते हैं। कई बार केंद्रीय बैंक उत्पादन (जो कि रोजगार निरूपित करता है) और मुद्रास्फीति को असमान महत्व देता है। इस उद्देश्य से हम समीकरण (10.1) को पुनः निम्नवत् लिखेंगे –

$$L = (y - y_e)^2 + \beta(\pi - \pi^T)^2 \quad \ldots (10.2)$$

समीकरण (10.2) में, यदि $\beta = 1$ तो हम समीकरण (10.1) की ही भाँति स्थिति में होते हैं। यदि $\beta > 1$ तो केंद्रीय बैंक मुद्रास्फीति का लक्ष्य हासिल करने पर अधिक जोर देता है (अर्थात् उसे मुद्रास्फीति के अपने लक्ष्य से विचलित होने पर अधिक हानि होने की आशंका है)। इस प्रकार के दृष्टिकोण को 'मुद्रास्फीति–प्रतिकूल' माना जाता है। दूसरी ओर, यदि $\beta < 1$ तो केंद्रीय बैंक लोगों के बेरोजगार रहने पर अधिक कल्याण हानि की कल्पना करता है। केंद्रीय बैंक इस प्रकार की स्थिति को 'बेरोजगारी–प्रतिकूल' मानकर चलता है।

उक्त हानि फलन को हम आरेखीय रूप से 'हानि वृत्तों' के माध्यम से दर्शाते हैं। ये वृत्त ठीक उन तटस्थता या उदासीनता वक्रों की भाँति होते हैं जिनके विषय में हमने व्यष्टि अर्थशास्त्र में पढ़ा था।

चलिए, उत्पादन को x–अक्ष और मुद्रास्फीति को y–अक्ष पर दर्शाते हैं (देखें चित्र 10.2)। यहाँ कल्याण बिंदु बिंदु (y_e, π^T) को निरूपित करती रेखाओं के प्रतिच्छेदन से दर्शाया गया है।

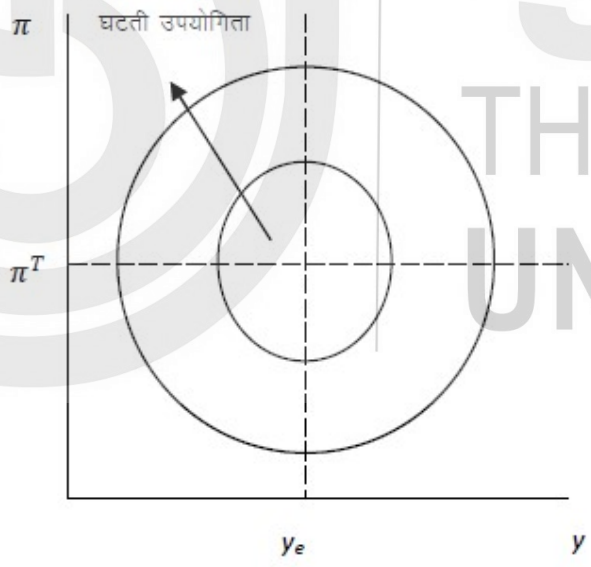

चित्र 10.2: संतुलित दृष्टिकोण ($\beta = 1$)

आइए, चित्र 10.2 के प्रथम वृत्तपाद (आरेख के शीर्ष दाएँ खंड) पर विचार करें, जहाँ हम उत्पादन और रोजगार में स्थिति विचलन $(y > y_e;\ \pi > \pi^T)$ देखते हैं। यदि अर्थव्यवस्था कल्याण बिंदु से विचलित होती है तो यह कल्याण हानि दर्शाएगा। यदि केंद्रीय बैंक का दृष्टिकोण संतुलित (यथा, $\beta = 1$) है तो बेरोजगारी और मुद्रास्फीति को समान महत्व दिया जाएगा। उपर्युक्त को हम ऐसे भी समझ सकते हैं कि संभावित उत्पादन से वास्तविक उत्पादन में 1 प्रतिशत विचलन का अर्थ होगा – लक्षित मुद्रास्फीति से वास्तविक

मुद्रास्फीति में 1 प्रतिशत की राशि में ही कल्याण हानि। ये दोनों ही दोष मुद्रास्फीति और उत्पादन अंतराल के विभिन्न संयोजन दर्शाते किसी तटस्थता वक्र (मूल बिंदु पर नतोदर) से निरूपित किए जा सकते हैं।

दूसरे वृत्तपाद में हम एक ऐसी स्थिति पर विचार करेंगे जहाँ वास्तविक उत्पादन संभावित उत्पादन से कम ($y < y_e$) होता है और वास्तविक मुद्रास्फीति लक्षित मुद्रास्फीति से अधिक ($\pi > \pi^T$)। चूँकि इसमें देश के लिए आर्थिक कल्याण हानि शामिल होती है, इसका निरूपण हम एक तटस्थता वक्र से ही करते हैं। एक समरूप तर्क विकसित कर हम यह ज्ञात कर सकते हैं कि इस उदाहरण में तटस्थता वक्र दरअसल एक वृत्त है! इसे 'हानि वृत्त' की संज्ञा दी जा सकती है।

अब उसी विधि को अपनाते हुए जिसमें हमने उत्पादन और मुद्रास्फीति दोनों में 1 प्रतिशत विचलन हेतु एक हानि वृत्त खींचा था, हम एक और हानि वृत्त 2 प्रतिशत विचलन के लिए खींच सकते हैं। तदनुसार, हम केंद्रबिन्दु पर (y_e, π^T) के साथ सकेंद्री वृत्तों की एक शृंखला उकेर सकते हैं। अब यह कोई 'चाँदमारी का निशाना' प्रतीत होता है; केंद्रीय बैंक का लक्ष्य होगा – सही निशाना लगाना; और इस निशाने से विचलन का अर्थ होगा – अर्थव्यवस्था के लिए घटती उपयोगिता।

उक्त हानि वृत्तों की आकृति मुद्रास्फीति और बेरोजगारी के प्रति केंद्रीय बैंक के दृष्टिकोण पर निर्भर करेगी। चित्र 10.2 में हमने पूर्ण वृत्त ही दर्शाए हैं क्योंकि केंद्रीय बैंक उत्पादन और मुद्रास्फीति से विचलन के विषय में समान रूप से चिंतित ($\beta = 1$) है।

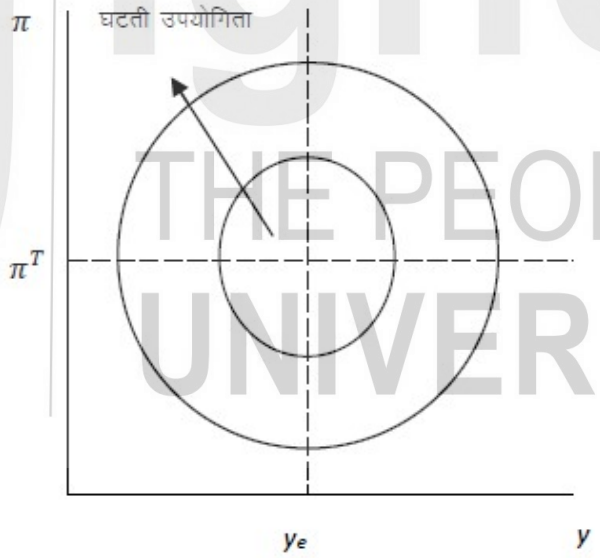

चित्र 10.3: मुद्रास्फीति–प्रतिकूल ($\beta = 1$)

यदि केंद्रीय बैंक मुद्रास्फीति–प्रतिकूल हुआ (अर्थात् वह मुद्रास्फीति को बेरोजगारी से कहीं बड़ा चिंता का विषय मानता हो) तो उसे कल्याण की किसी हानि विशेष में बेरोजगारी की अपेक्षा मुद्रास्फीति में कुछ कम विचलन की अपेक्षा होगी। इस स्थिति में हानि वृत्त दीर्घवृत्ताभ की भाँति होगा (जैसा कि चित्र 10.3 में दर्शाया गया है)। यहाँ केंद्रीय बैंक बेरोजगारी में बड़ी कमी के साथ मुद्रास्फीति में थोड़ी–सी वृद्धि का सामंजस्य बैठाएगा।

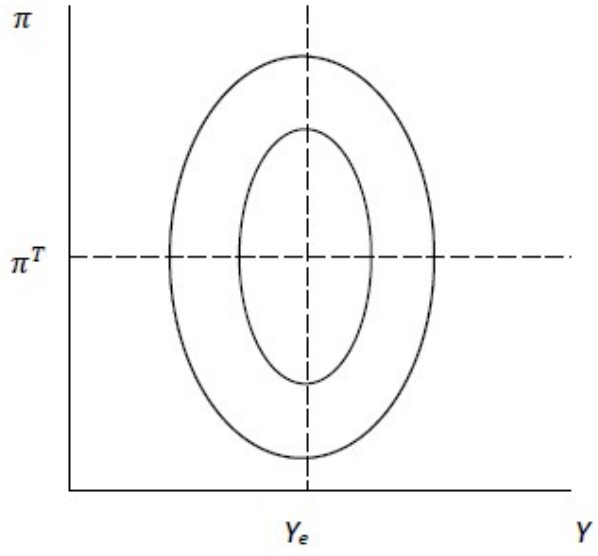

चित्र 10.4: बेरोजगारी–प्रतिकूल ($\beta < 1$)

दूसरी ओर, यदि केंद्रीय बैंक बेरोजगारी–प्रतिकूल हुआ (अर्थात् वह बेरोजगारी को मुद्रास्फीति से कहीं बड़ा चिंता का विषय मानता हो) तो वह बेरोजगारी में थोड़ी–सी कमी के साथ मुद्रास्फीति में बड़ी वृद्धि का सामंजस्य बैठाएगा। इस स्थिति में हानि वृत्त चित्र 10.4 में दर्शाए गए दीर्घवृत्ताभ की भाँति होगा।

10.4.1 टेलर का नियम

ब्याज–दर निर्धारण संबंधी टेलर का नियम मुद्रास्फीति दर को मानक ब्याज दर की तुलना में एक उच्चतर दर पर तय करता है। ऐसा तब होता है जब मुद्रास्फीति लक्षित मुद्रास्फीति दर से अधिक रहने आशंका हो तथा उत्पादन रोजगार की स्वाभाविक दर पर होने वाले उत्पादन से कहीं अधिक होने की आशा। दूसरी ओर, यदि मुद्रास्फीति अपने लक्षित स्तर से नीचे रहे अथवा उत्पादन रोजगार की स्वाभाविक दर पर होने वाले उत्पादन से कहीं कम रहे तो ब्याज दर का स्तर मानक ब्याज दर की तुलना में कुछ नीचे ही रखा जाता है।

विश्व भर में केंद्रीय बैंकों के बीच ब्याज–दर निर्धारण संबंधी निर्देशक सिद्धांत स्वरूप टेलर का नियम ही प्रसिद्ध है। सरल शब्दों में, यह नियम बेरोजगारी की स्वाभाविक दर और मुद्रास्फीति की लक्षित दर से विचलन के आधार पर ब्याज दरों में अपनी मानक दर से परिवर्तनों की सिफारिश करता है। जब मुद्रास्फीति अपनी लक्षित दर आगे बढ़ जाती है तो ब्याज दर बढ़ा दी जाती है। इसी प्रकार, यदि उत्पादन पूर्ण नियोजन स्तर से ऊपर हो तो ब्याज दर का स्तर बढ़ा दिया जाता है। किंतु यदि मुद्रास्फीति अपने लक्षित स्तर से नीचे रहे अथवा उत्पादन अपने लक्षित स्तर से नीचे रहे तो ब्याज दर घटा दी जाती है। अतएव, आम तौर पर मुद्रास्फीति और उत्पादन नियंत्रित करने के लिए ब्याज दरों में हेर–फेर की कोई सीमा नहीं है, परंतु अवस्फीति और बेरोजगारी की अवधि में यह भिन्न रखी जाती है।

वस्तुतः विश्व वित्त संकट के उपरांत, टेलर समीकरण का अनुपालन करते हुए, ब्याज दरें घटाकर ऋणात्मक मात्रिक दरों पर लानी पड़ी थीं, जो कि असमर्थनीय था।

ब्याज–दर निर्धारण संबंधी टेलर का नियम हम निम्नवत् लिख सकते हैं –

$$i_t = i' + \gamma_1(\pi - \pi^T) + \gamma_2(y - y_e) \quad \ldots (10.3)$$

जहाँ

i_t अल्पावधि हेतु लक्षित ब्याज दर (निर्धारित की गई दर) पर काम कर रहा है;

i' विद्यमान ब्याज दर (मानक ब्याज दर) है;

$(\pi - \pi^T)$ मुद्रास्फीति और लक्षित मुद्रास्फीति के बीच का अंतराल है;

$(y - y_e$¿ उत्पादन अंतराल है; तथा

γ_1 और γ_2 बेरोजगारी और मुद्रास्फीति को निर्दिष्ट महत्व निरूपित करते मॉडल के प्राचल हैं।

समीकरण (10.3) के अनुसार, यदि अर्थव्यवस्था में कोई धनात्मक उत्पादन अंतराल हो (अर्थात् वास्तविक उत्पादन पूर्ण–क्षमता उत्पादन से अधिक हो) तो केंद्रीय बैंक को ब्याज दर बढ़ा देनी चाहिए। दूसरी ओर, यदि उत्पादन अंतराल ऋणात्मक हो (अर्थात् वास्तविक उत्पादन पूर्ण–क्षमता उत्पादन से कम हो) तो अर्थव्यवस्था में अतिरिक्त क्षमता होती है, और इस कारण ब्याज दर घटा दी जानी चाहिए। साथ ही, यदि वास्तविक मुद्रास्फीति दर (π) लक्षित मुद्रास्फीति दर (π^T¿ से अधिक हो तो केंद्रीय बैंक को ब्याज दर बढ़ा देनी चाहिए। दूसरी ओर, यदि वास्तविक मुद्रास्फीति दर लक्षित मुद्रास्फीति दर से कम हो तो केंद्रीय बैंक को ब्याज दर घटा देनी चाहिए।

मान लीजिए कि किसी अर्थव्यवस्था के संदर्भ में निम्नलिखित जानकारी दी गई है –

$\gamma_1 = 0.5$, $\gamma_2 = 0.5$, $\pi^T = 0.04$, और $i' = 0.02$

यहाँ टेलर का नियम निम्नवत् नजर आएगा –

$$r = 0.02 + 0.5(\pi - 0.04) + 0.5(y - y_e) \quad \ldots (10.4)$$

समीकरण (10.4) को अपनाकर केंद्रीय बैंक ब्याज दर निर्धारित कर सकता है।

10.5 मात्रात्मक सुकरण

जब ब्याज दरें शून्य के बहुत निकट होती हैं तो अर्थव्यवस्था 'लिक्विडिटी ट्रैप' क्षेत्र में प्रवेश कर जाती है, जहाँ मौद्रिक नीति पूरी तरह निष्प्रभावी होती है। लोग स्वयं को आपूर्तित धन की अधिकाधिक मात्रा को अपने पास ही रहने देना चाहते हैं। ऐसे परिदृश्य में आर्थिक क्रियाकलाप को प्रोत्साहित करने के लिए केंद्रीय बैंक एक भिन्न रणनीति अपनाता है। इसके अंतर्गत 'क्वान्टिटेटिव ईजिंग' अर्थात् मात्रात्मक सुकरण नामक एक प्रक्रिया के माध्यम से वित्त व्यवस्था में मुद्रा सीधे प्रवाहित कर दिया जाता है। इसे *परिसंपत्ति क्रय योजना* भी कहा जाता है क्योंकि इसके अनुसार केंद्रीय बैंक परिसंपत्ति–पोषित प्रतिभूतियाँ खरीदना शुरू कर देता है।

मात्रात्मक सुकरण को मुद्रा मुद्रण समझना गलत होगा क्योंकि इसके अनुसार कोई नकदी नहीं छापी जाती। नोट छापने की बजाय केंद्रीय बैंक इलेक्ट्रॉनिक अथवा डिजिटल मुद्रा का सृजन करता है, जिसे ऋणपत्र या बॉण्ड खरीदने के लिए प्रयोग किया जाता है। केंद्रीय बैंक ये ऋणपत्र खरीदने के लिए अपने आरक्षित निधिध्भंडारों को ऋण जारी करता है। परिणामतः वाणिज्यिक बैंकों को अपने आरक्षित भंडारों की अपेक्षा से कहीं अधिक मिल जाता है। अब ये बैंक अतिरिक्त आरक्षित निधि से ऋणदान कर लाभ कमाते हैं।

मात्रात्मक सुकरण से ऋणपत्रों की माँग अथवा सुरक्षित परिसंपत्तियों में बढ़ोतरी होती है। इन ऋणपत्रों का बाजार मूल्य बढ़ता है। अब बैंकों और वित्तीय संस्थाओं के पास पहले से अधिक धन होता है, जिसे ऋणदान बढ़ता है, पहले से अधिक व्यापार निवेश होता है, और आर्थिक क्रियाकलाप को प्रोत्साहन मिलता है। जब अर्थव्यवस्था फिर से अच्छी हो जाती है तो केंद्रीय बैंक इन परिसंपत्तियों को बेच देता है और बिक्री से प्राप्त नकदी का निष्फलन कर देता है ताकि व्यवस्था में अतिरिक्त धन बचा न रहे।

इस प्रकार, मात्रात्मक सुकरण का उद्देश्य बैंकिंग प्रणाली में तरल पूँजी भर देना होता है ताकि बैंक आर्थिक क्रियाकलाप को प्रोत्साहित करने के लिए धन उधार दे सकें। अतः इसे केंद्रीय बैंक के तुलन–पत्र और अर्थव्यवस्था के मौद्रिक आधार का एक सुविचारित विस्तार कहा जा सकता है। तथापि, इस प्रक्रिया से मुद्रास्फीति बढ़ने का खतरा सदैव बना रहता है।

वर्ष 2007–08 का वैश्विक वित्त संकट आपको याद ही होगा। इस दौरान ब्याज दरों में कटौती अनेक केंद्रीय बैंकों द्वारा लागू की गई थी, जिनमें प्रमुख रहे – फेडरल रिजर्व, यूरोपियन सैंट्रल बैंक, बैंक ऑफ जापान तथा बैंक ऑफ इंग्लैण्ड। ऐसे उपाय गैर–परंपरागत मौद्रिक नीतियों से गहरे जुड़े थे, यथा ऋणपत्रों का क्रय।

वैश्विक वित्त संकट के उपरांत विश्व भर में केंद्रीय बैंकों की ओर से परिसंपत्तियों की खरीद बड़े पैमाने पर हुई।

10.6 मौद्रिक नीति की कमियाँ

ब्याज दरें निर्धारित करने संबंधी टेलर के नियम के अनुसार, यदि अर्थव्यवस्था मुद्रास्फीतिकारी रीति से काम कर रही हो अथवा यदि उत्पादन का स्तर संभावित उत्पादन स्तर से ऊपर जा रहा हो तो वर्तमान ब्याज दर मानक ब्याज दर से अधिक कर दी जानी चाहिए। परंतु जब मुद्रास्फीति का वर्तमान स्तर मुद्रास्फीति की लक्षित दर से नीचे हो, अथवा उत्पादन का स्तर संभावित उत्पादन स्तर से नीचे जा रहा हो तो केंद्रीय बैंक को वर्तमान ब्याज दर मानक ब्याज दर से कम कर देनी चाहिए। वैसे प्रायः ब्याज दर निर्धारण इतना आसान नहीं होता। ऐसा इसलिए है कि विकसित अर्थव्यवस्थाओं में ब्याज दर विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में प्रचलित ब्याज दर से काफी कम होती है।

ब्याज दर निर्धारण संबंधी टेलर के नियम के अनुसार, यदि ब्याज दर शून्य के करीब अथवा ऋणात्मक पक्ष पर अवनत हो तो केंद्रीय बैंक शायद मानक दर को और घटाने की स्थिति में न हो। वर्ष 2016 से ही जापान में, उदाहरण के लिए, ब्याज दर ऋणात्मक पक्ष में ही विद्यमान है (जापान में ब्याज की वर्तमान दर, मई 2021 में अंकित, (–) 0.10 प्रतिशत प्रति वर्ष है)। वर्ष 2007–2009 के वैश्विक वित्त संकट के पश्चात अनेक देशों को शून्य ब्याज दर की ऐसी दशाओं से दो–चार होना पड़ा। इससे पता चलता है कि मौद्रिक नीति की कोई सीमा नहीं होगी, परंतु विस्तारकारी प्रोत्साहन (राजकोषीय व्यय और ऋणपत्रों के गैर–परंपरागत क्रय के जरिए), यथा मात्रात्मक सुकरण ऐसी दशाओं में मदद कर सकता है।

बोध प्रश्न 3

1) हानि फलन (loss function) की संकल्पना स्पष्ट करें।

.....

.....

.....

.....

2) किसी मुद्रास्फीति–प्रतिकूल अर्थव्यवस्था के लिए हानि फलन का सचित्र वर्णन करें।

.....

.....

.....

.....

3) किसी अर्थव्यवस्था में ब्याज दर निर्धारण हेतु टेलर का नियम समझाएँ।

.....

.....

.....

.....

10.7 सार संक्षेप

इस इकाई में होने मुद्रा के परिमाण सिद्धांत पर विस्तृत चर्चा की। इस संदर्भ में हमने अल्पावधि और दीर्घावधि में मुद्रा की तटस्थता संबंधी संकल्पना को समझा।

इकाई में टेलर के नियम पर संक्षिप्त चर्चा की गई, जो कि बतलाता है कि किस प्रकार केंद्रीय बैंक मुद्रास्फीति में प्रत्येक एक–प्रतिशत वृद्धि के लिए मात्रिक ब्याज दर को बढ़ा दिया करता है ताकि अर्थव्यवस्था स्थिर हो।

किसी लिक्विडिटी ट्रैप जैसी स्थिति में मौद्रिक नीति के साधन निष्प्रभावी साबित हो सकते हैं। केंद्रीय बैंक मात्रात्मक सुकरण भी अपना सकता है, जो कि बैंकों की ऋणदान दरों को घटाकर बैंकिंग प्रणाली में तरल पूँजी भर देता है।

10.8 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

बोध प्रश्न 1

1. मुद्रा–परिमाण सिद्धांत के अनुसार, किसी भी अर्थव्यवस्था में मुद्रा की मात्रा और कीमतों के स्तर में एक सीधा संबंध होता है। तदनुसार, मुद्रा को तटस्थ रहना चाहिए। बहरहाल, अल्पावधि में मुद्रा तटस्थ नहीं रहती। विस्तृत विवरण के लिए पाठांश 10.2 देखें।
2. मौद्रिक हस्तांतरण मौद्रिक नीति और कुल माँग के बीच एक कड़ी है। हस्तांतरण क्रियातंत्र के विभिन्न माध्यम हैं। विस्तृत विवरण के लिए पाठांश 10.2 देखें।

बोध प्रश्न 2

1. विस्तृत विवरण के लिए पाठांश 10.3 देखें।
2. देखें पाठांश 10.3.1 और उत्तर दें।

बोध प्रश्न 3

1. देखें समीकरण (10.1) और व्याख्या करें।
2. देखें चित्र 10.3 और व्याख्या करें।
3. देखें समीकरण (10.3) और व्याख्या करें।